दाराशिकोह विरचितम्

समुद्र संङ्गमः

मूल संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित

दक :

बाबू लाल शुक्ला

मुहम्मद-दाराशुकोह प्रणीतः

समुद्र-सङ्गमः

(सङ्गमनी नाम हिन्दी व्याख्यानेनानुगतः)

सम्पादक : एवं व्याख्याकार

आचार्य बाबूलाल शुक्ल शास्त्री

मध्यप्रदेशशासन (साहित्यपरिषद्) सम्मानित

अनुसंधानआचार्य, कालिदास अकादेमी,

कोठीरोड, उज्जैन (म०प्र०)

भारतीय विद्या प्रकाशन

दिल्ली (भारत) वाराणसी

प्रकाशन : भारतीय विद्या प्रकाशन

1. : 1 यू॰ वी, जवाहरनगर बैंग्लोरोड,
दिल्ली-110007 (भारत)

2. : पो॰ बा॰ 1108, कचौड़ी गली, वाराणसी-221001

97

ISBN — 81-217-0113-9

मूल्य : 100.00

प्रथम संस्करण - 1995

टाईप सैटिंग : गीता कम्प्यूटर
सी॰ 446, गली न॰ 10 मजलिस पार्क
आदर्शनगर, दिल्ली-110033

मुद्रक : जैन अमर प्रिंटिंग प्रेस
जवाहरनगर, बैंग्लोरोड
दिल्ली-110007

प्रकाशकीय

मुहम्मद दारा शिकोह के 'समुद्रसङ्गम' ग्रन्थ का संस्कृत भाषा तथा साहित्य में कई रूप में अद्वितीय स्थान माना जाता है। प्रथम तो यह भारत के मुगल शासक महान् अकवर के वंश में उत्पन्न राजकुमार, दूसरे फारसी, अरवी तथा संस्कृत भाषा के अभिज्ञ तथा ग्रन्थरचनाकार के रूप में तथा तीसरे धर्म, दर्शन के ऐसे ग्रन्थ क्रम में आना जिससे उस समय के दो प्रमुख धर्म हिन्दु या आर्य धर्म तथा मुस्लिम धर्म के कुछ महत्वपूर्ण भागों में अविरोधी रूप को उजागर कर उसके बीच संवादात्मक सेतु का कार्य करना। यद्यपि वह अपने कार्य में कितनी सफलता पा सका यह दूसरी वात हैं किन्तु फिर भी इसकी वर्तमान में भी प्रांसगिकता है यह कहना आज प्रासंगिक है।

वर्षों से इस ग्रन्थ की संस्कृत प्रति के मूल पाठ के साथ हिन्दी अनुवाद आदि के साथ संस्करण की अपेक्षा रही तथा इसी कारण आज इसे प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है कि दाराशिकोह का यह सम्भावना पूर्ण प्रयास भावी भारत के संस्कृत विद्वानों को अभीष्ट जानकारी देने वाले मूल ग्रन्थकार के प्रयास को सार्थकता दे सके। हमने यह सर्व प्रथम हिन्दी व्याख्या तथा अपेक्षित टिप्पणी तथा विद्वताप्रचुर प्रस्तावना के साथ सर्वप्रथम प्रकाशित कर एक अभाव की पूर्ति में अपना योगदान दिया है यह निर्विवाद है।

प्रकाशक

प्रस्तावना

धर्म एवं दार्शनिक चिन्तन की तुलनात्मक साहित्य की श्रृंखला में मूल्यवान् अवदान के रूप में ''समुद्र-संङ्गम'' की स्थिति अति महत्व रखती है । इस धारा में शाहजादा दारा शिकूह रचित ''समुद्र-संङ्गम'' का एक ओर जहाँ संस्कृत भाषा में एक महत्वशाली स्थान है, वहीं यह अपने मौलिक एवं स्वतन्त्र तात्विक चिन्तन के कारण ऐतिहासिक महत्व भी रखता है । इस दुर्लभ एवं उपयोगी ग्रन्थ का सुसम्पादित तथा हिन्दी अनुवाद के साथ प्रथमवार प्रकाशित कर प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे प्रसन्नता एवं सन्तोष का अनुभव भी हो रहा है । यह ऐसा ग्रन्थ है जो एक मुस्लिम शाही परिवार के गम्भीर चिन्तक के द्वारा रचित है तथा जिसकी अपने रचनाकाल के वर्ष में ही दो भाषाओं में रचना हुई, जिनमें प्रथम फारसी-भाषा तथा दूसरी संस्कृत भाषा में और जो कदाचित् इस्लाम तथा उसके अध्येताओं एवं भारतीय वैदिकमतावलम्वी स्वाध्यायीजन को ध्यान में रखकर ही इन भाषाओं में लिखे गये थे । इस विशिष्ट रचना की चर्चा सदैव अपनी चिन्तनगत मौलिकता के कारण भारत में अपने लेखनकाल से ही आरम्भ हो गयी थी तथा इसी कारण लगभग 100 वर्ष के वीतने तक इसका अरवी भाषा में भी अनुवाद हो चुका था । इस ग्रन्थ की रचना तथा उसके रचयिता के भारतीय मुगल सम्राट् अकवर के वंशधर रहने से और भी महत्व बढ़ गया है जिसकी यहाँ चर्चा और विवरण देने का विनम्र प्रयास किया गया है ।

दाराशिकूह–व्यक्तित्व तथा जीवन

''समुद्र-संङ्गम'' जैसे अनुपम ग्रन्थ के रचयिता दारा का सम्पूर्ण नाम शहजादा मुहम्मद दारा शिकूह था । ये सम्राट शाहजहान् के प्रथम या ज्येष्ठ पुत्र थे तथा दारा ने अपने ग्रन्थ ''सफीनत-उल-औलिया'' में स्वयं की जन्म तिथि और कुछ आत्म-विवरण भी दे दिया है । वह कहता है कि मेरा जन्म अजमेर के परिसर में सागर ताल पर सफर (मास) के अन्तिम दिन की मध्यरात्रि में हिजरी वर्ष 1024 या ईसवी 1615 में हुआ था । सम्राट् शाहजहान् पुत्र प्राप्ति की कामना से अजमेर के सुप्रसिद्ध सूफी सन्त मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर जियारत एवं मिन्नत के लिये जाते रहते थे क्योंकि तव तक उनकी तीन लड़कियाँ ही थी । दारा का दृढ़ विश्वास था कि उनके पिता को सन्त की ही आशीष और कृपा के फलस्वरूप पुत्र प्राप्त हुआ था । दारा शिकूह से छोटे तीन भाई और थे जिनके नाम है शुजा, मुराद तथा औरंगजेव । दाराशिकूह सम्राट् शाहजहाँ के अतिशय प्रिय पुत्र रहे जिनकी करूण जीवन गाथा से इतिहासविद् भलीभांती परिचित हैं । मुगल सम्राट् के प्रिय होने के कारण दारा को अपने समीप ही शाही दरवार में अधिक रखा गया था और इसी कारण दारा को किसी प्रान्त का सूवेदार वना कर दूर नहीं भेजा गया जवकि उसने अपने दूसरे पुत्रों-शुजा, मुराद, और औरंगजेव को प्रशासन की अपेक्षा से दूर भी भेजा गया था । इसी वात के कारण तथा इसी आधार पर दारा शास्त्रज्ञान एवं विभिन्न विद्याओं में तो पारंगत हो गया परन्तु वह ऐसे प्रशासकीय अनुभव तथा सभी प्रान्तों की प्रजा एवं उनके प्रशासकों के सम्पर्क से दूर रह जाने के कारण अगले जीवन में संकट में आ गया था ।

दाराशिकूह जब तेरह वर्ष के हुए तो उनकी प्रारंभिक शिक्षा दीक्षा के लिए सम्राट् शाहजहाँ ने उपयुक्त गुरु नियुक्त किये गये । जिनसे उन्हें पवित्र कुरआन मजीद, हदीस तथा फारसी भाषा के काव्य आदि की व्यवस्थित शिक्षा दी गई । इतिहासकारों के अनुसार उनके आरम्भिक गुरूओं में मुल्लाह अब्दुललतीफ सुल्तानपुरी थे, जिनसे दारा ने दीर्घकाल तक शिक्षा प्राप्त की थी । दारा ने ''सफीनतुल-औलिया'' नामक (अपने) ग्रन्थ में अपने एक गुरू मीरनशेंख का आदर सहित नाम लिया है तथा दूसरे गुरू थे शेख अहमद देहलवी । इसके अतिरिक्त भी दारा ने अनेक गुरू और विद्वानों से सम्पर्क रखा था और उसने अपने अध्ययन को अरवी, फारसी तथा संस्कृत भाषा तक विस्तीर्ण किया था ।

उस समय मुगल वादशाहों के लिये सुलेख और चित्रकारी की विद्या भी अपेक्षित मानी जाती थी और दाराशिकूह ने इसके भी सुयोग्य विद्वानों का शिष्यत्व ग्रहण कर इस क्रम की प्रगति की थी। यह प्रसन्नता की बात है कि इनके सुलेख की सुन्दरता और दक्षता के नमूने आज भी विद्यमान हैं जो इसा विद्या के इनके ज्ञान और अभ्यास को प्रकट करते हैं ।

दाराशिकूह की रूचि सूफी साहित्य में अधिक रही अतः इनका सूफीमत पर झुकाव रहा था । इसी कारण सूफी सन्त मियाँ मीर और कवीरपन्थी वावा लालदास बैरागी से यह वेहद प्रभावित रहा और उन्हें इस तत्वज्ञान का बड़ा सन्त मानता रहा था । सूफियों में यह कादिरिया सिलसिले से सम्वन्ध रहा था जिसका प्रवर्तन अब्दुल कादिर जीलानी र०अ० ने किया था और इस श्रृंखला की एक महत्व पूर्ण कड़ी थी दाराशिकूह । इनकी दो पुस्तकें ''सफीन-तुल-औलिया'' तथा ''सकीन तुल औलिया'' सूफी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है । दाराशिकूह ने अपने समय के प्रायः सभी सूफी सन्तों से सम्पर्क रखा था । उनसे धार्मिक और तात्विक चर्चाओं का आदान प्रदान रख बड़ा लाभ लिया था । इसने जीवन को एक नया मोड़ और चिन्तन दिया था जिसके फलस्वरूप वह इस्लाम तथा हिन्दू धर्मगत एकता के तत्वों को खोजने और उन्हें अमलीजामा पहनाने में लग गया था ।

दाराशिकूह का विवाह सुल्तान परवेज की पुत्री नादिरा बेगम के साथ हुआ था, जब उसकी 18 वर्ष की अवस्था थी । दाराशिकोह की पत्नी नादिरा वेगम वड़ी दक्ष और वुद्धिमती थी । इसने एक पुत्री को जन्म दिया जिसकी वाल्यावस्था में ही मृत्यु हो गयी थी । फिर उसने एक पुत्र को भी जन्म दिया जिसका नाम सुलेमान शिकूह रखा गया । इसके बाद एक दूसरा पुत्र हुआ जिसका नाम सुल्मान मेहर शिकूह था । इसके वाद उसे एक पुत्री और वाद में तीसरा पुत्र भी उत्पन्न हुआ जिसका नाम मुमताज शिकूह और फिर चौथे पुत्र का नाम सिपुहर शिकूह रखा गया ।

अपने पिता सम्राट् शाहजहाँ के समय दाराशिकूह ने कई पदों पर रहकर कार्य किया जिनमें इन्हें वारह हजारी मन्सव और छः हजारी सवार का पद मिला, इसके वाद में दो हजार सवारी हो गया और वाद में इन्हें पन्द्रह हजारी जात और नौहजारी सवार का मन्सव दिया गया । कहते हैं कि इतना वड़ा पद किसी दूसरे शहजादे को अव नहीं दिया गया था ।

दाराशिकोह के जीवन का भाग्य अपने पिता तथा सन्तों के साथ चर्चा भेंट आदि के साथ सूफीमत, ज्ञान, ध्यान तथा सुलेख और सम्पादन में लग गया फिर भी अपने गम्भीर अध्ययन के कारण वे एक अच्छे विद्वान् एवं लेखक रचनाकार के रूप में अपनी विशिष्ट छवि बनाए हुए थे । यह सम्राट् का ज्येष्ठ पुत्र तो था ही परन्तु बादशाह भी उनके गुणों के कारण कुछ अधिक स्नेह रखते थे और सब पुत्रों की अपेक्षा इसी के साथ सबसे अधिक रहे भी । जब बादशाह ने अपनी गद्दी छोड़ना चाही तो यही माना गया था कि गद्दी बड़े पुत्र दाराशिकूह को ही मिलना है । बादशाह शाहजहाँ भी स्वयं दाराशिकूह को ही अपनी गद्दी पर बिठाना चाहता था किन्तु गद्दी के लिए भाइयों में झगड़ा खड़ा हो गया जिसमें औरंगजेब और मुराद एक तरफ हो गये और वे दारा से लड़ने को तत्पर हो गये । ई. 1657 (हिज० 1068) में आगरे के निकट सम्भुगढ़ में दोनों ओर से फौजों की मुठभेड़ हुई जिसमें दाराशिकूह पराजित होकर दिल्ली की ओर चला गया और वहाँ से वह लाहौर की ओर बढ़ा । औरंगजेब दारा का पीछा करता हुआ दिल्ली पहुँचा और फिर पंजाब की ओर चलते हुए उसे समाचार मिला कि मुराद अब स्वयं ही गद्दी पर बैठना चाह रहा है । यह जानकर औरंगनेब वापस लौटा और उसने मुराद से लड़ने की तैयारी की । इस लड़ाई में मुराद पकड़ा गया जिसे औरंगजेब ने बन्दी बना डाला । इसी बीच उसे अपने भाई शुजा का उससे लड़ने के लिए आने का समाचार मिला । यह जानकर उसकी ओर भी औरंगजेब लौटा और थोड़े ही प्रयत्न में वह भी औरंगजेब से युद्ध में हार गया । पिता शाहजहान् और उनकी बड़ी लड़की जहाँआरा बेगम ने सभी भाइयों के आपस में न लड़ने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु उनका यह प्रयत्न विफल हुआ । ई. सन् 1658 (1069 हिज्री.) में एक बार पुनः दाराशिकूह की पराजय हो गयी और वह भी बन्दी बना लिया गया । इसी बीच दाराशिकूह की पत्नी नादिरा बेगम की मृत्यु हो जाने से दाराशिकूह का मनोबल भी शिथिल होकर वह अधिक निर्बल हो गया । कहा जाता है कि दाराशिकूह को उसकी बन्दी दशा में ही मुहर्रम महीने की बीस तारीख को (हिज्री सन् 1069 या 9 अक्टूबर ई. सन् 1659 में) देहली में मार दिया गया और उसे देहली में ही हुमायूँ के मकबरे में शाहजादा दानियाल और मुराद के पहलू में दफ़ना दिया गया । मृत्यु के समय दाराशिकूह की आयु 45 वर्ष की थी । कुछ इतिहासकार दारा की मृत्यु आगरा में मानते हैं जिसकी पुष्टि नहीं होती ।

दाराशिकूह की रचनाएँ –

सफीन-तुल-औलिया – दारा शिकूह ने अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की थी क्योंकि वह निरन्तर स्वाध्याय करने वाला एक गम्भीर स्वभाव का चिन्तक तथा लेखक था । उसने अपने जीवन में पीरों, सन्तों, विद्वानों से सम्पर्क रखा उनसे चर्चाएँ की और इसी कारण वह अपनी पच्चीस वर्ष की अवस्था (हि. सन् 1049) से ग्रन्थ लेखन में प्रवृत्त हो गया था । इसने सर्वप्रथम अपने ग्रन्थ इस्लामधर्म को लेकर लिखे । इसमें प्रथम – ''सफीनतुल-औलिया'' ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में आठ भाग हैं । इस ग्रन्थ का आधार अरबी और फारसी

भाषा में स्थित अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ हैं । यह अनेक ग्रन्थों के अध्ययन से सपरिश्रम लिखा गया ऐसा ग्रन्थ हैं जिसमें इस्लाम धर्म के प्रवर्त्तकं पैगम्बर मुहम्मद एवं उनके बाद आने वाले चार खलीफा बारह इमामों, चारं सुन्नियों के इमामों और उनके शिष्यों के वृतान्त दिये गये हैं । इसमें इसी क्रम में बड़े व्यापकरूप से शेष विवरण सप्रमाण एवं साधार रोचकता से वर्णित है । यह ग्रन्थ लखनऊ, कानपुर और आगरा से प्रकाशित है तथा इसकी स्वयं लेखक के द्वारा लिखित महत्वपूर्ण हस्तलिखित प्रति भी विद्यमान है जिस पर दाराशिकूह कादरी लिखा हुआ है जिससे यह प्रकट है कि वह इनकी सुफी श्रृंखला में कादरी श्रृंखला का अनुगामी था । यह प्रति खुदाबख्श पुस्तकालय पटना में स्थित है ।

सकीनतु-ल-औलिया – यह दारा की दूसरी पुस्तक है जो वर्ष हिजरी 1054 (हि.ई. 1644) में 28 वर्ष की अवस्था में लिखी गयी थी । इस पुस्तक को लिखने में तीन वर्षों तक लेखक अतिव्यस्त रहा । इस ग्रन्थ में सूफीमत के बाद विवाद, शेख अब्दुलकादिर जीलानी के वृतान्त, मिया जीव के कार्य तथा वृतान्त, मुल्ला शाह के वृतान्त और मियाजीव के अनुयायियों के विवरण हैं । यह पुस्तक एक शोध पूर्ण ग्रन्थ है जिसमें सूफीमत तो है ही परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें दारा के ऐसे व्यवहज्जगत के ऐसे वृतान्त भी हैं जिनका सम्बन्ध कादिरिया श्रृंखला से रहा है । इस ग्रन्थ को अनेक आधार ग्रन्थों को देखकर लिखा गया है । इस ग्रन्थ का फारसी से उर्दूभाषा में सन् 1920 में अनुवाद हो चुका है तथा यह अनेक ग्रन्थालयों में विद्यमान हैं ।

रिसाला-ए-इकनुमा – यह ग्रन्थ भी सूफीमत से सम्बद्ध है जिसे दारा ने 32 वर्ष की आयु में ई.स. 1646 में (हि० 1056) लिखा थी । इसमें सूफीमत के कुछ प्रसिद्ध एवं प्रामाणिक ग्रन्थों का संक्षिप्त सार संकलन के साथ ही विभिन्न (विशिष्ट) ग्रन्थों को चिन्तन की सीमा में लेकर उदात्त आत्मिक पूर्णता के आशय को भी विवेचित किया गया है । यह एक महत्वशाली कृति हैं । यह मूल फारसी में 1881 ई० में तथा बाद में 1910 में प्रकाशित हो चुकी है तथा मूल फारसी के साथ अंग्रेजी अनुवाद 1910 में प्रकाशित हुआ जिसका दूसरा संस्करण तेहरान् से वर्ष 1957 में फिर हुआ था ।

हसनात-उल-आरफीन – इसे वर्ष 1651 ई० से आरम्भ कर 1653 ई० में पूर्ण किया गया था । (हि० सन् 1062 से 1064 तक) । इसमें सूफीमत के रहस्य तत्वों से पूर्ण प्राचीन काल के सन्तों पूज्यजनों के मुँह से निकले उपदेशों एवं वचनों का एवं समसामयिक सन्तों से उन पूर्वज सूफी विरक्त संन्तों के सुने हुए वचनों को भी संकलित किया गया है जो महत्वपूर्ण है । यह पुस्तक प्रसिद्ध सिद्ध सन्त बाबालाल से भेट होने के बाद लिखी गयी है । जिसमें हुसेन बिन मन्सूर, अल-हल्लाज, अबूसईद इब्न अबुलखैर, मुहीउद्दीन इब्न अरबी, मौलाना रूमी, अब्दुलकादिर जीलानी, मुईउद्दीन चिश्ती, महात्मा कबीर, बाबा लालदास बेरागी आदि के शत्हियान हैं ।

मज्मउल् बहरैन या समुद्रसङ्गम – दाराशिकूह का यह ग्रन्थ हिज्री 1065 (सन् 1654) में जब उसकी आयु 42 वर्ष की थी लिखा गया यह प्रथम ऐसी पुस्तक है जिसे लेखक ने

प्रथम फारसी भाषा में और वाद में संस्कृत भाषा में भी तैयार किया है । इसके संस्कृत पाठ तथा प्रतिपाद्य विषयों आदि पर आगे विचार हो रहा है । इसमें लेखक की अभिलाषा यह थी कि इस्लाम तथा भारतीय हिन्दू धर्मगत समानता स्पष्ट हो कर दोनों धर्म एकता के तत्वों को विचार कर देखें । इस ग्रन्थ का फारसी मूल के साथ अंग्रेजी अनुवाद मौलवी महफूज़ुल हक ने सम्पादित कर एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता से वर्ष 1935 में प्रकाशित करवाया । इसी के संस्कृत पाठ के "समुद्र-संङ्गम" का अंग्रेजी अनुवाद डॉ० रमाचोधरी ने किया तथा प्राच्यवाणी कलकत्ता से डॉ० जतीन्द्र विमल चौधरी ने प्रकाशित किया । यह ग्रन्थ लेखक की मृत्यु के लगभग १२० वर्षों के वाद ही सर्वप्रथम अरवी भाषा में अनूदित हो गया था । इसके फारसी पाठ का तेहरान से वर्ष 1957 ई. में सम्पादित संस्करण प्रकाशित हुआ । दारा का एक यही ऐसा ग्रन्थ है जो निरन्तर अनुशीलित तथा अनेक भाषाओं में अनूदित हुआ है ।

सिर-ई-अकवर – (उपनिषद्) इस ग्रन्थ में भारतीय उपनिषदों का अनुवाद हैं जिसमें लगभग 50 उपनिषद् को लेकर फारसी भाषा में दारा ने अनुवाद किया । इस ग्रन्थ को अपनी मृत्यु से लगभग 2 वर्ष पूर्व में छः मास में पूर्ण किया । इसे प्रतिष्ठित पण्डितों और सन्यासियों की सहायता और सहमति से तैयार किया गया था । इसमें उपनिषद्रों का केवल शाब्दिक अनुवाद ही नहीं है किन्तु उपयुक्त स्थलों पर स्पष्ट करने के लिए व्याख्या भी की हुई है । इस अनुवाद की महत्वशाली विशेषता यह है कि अनेक उपनिषदों में स्थित पारिभाषिक पदों के इस्लाम सम्मत पारिभाषिक पदों का प्रयोग हुआ है । यह ग्रन्थ 1910-11 में जयपुर से प्रकाशित हुआ तथा बाद में 1961 में उपयोगी टिप्पणियों के साथ डॉ० ताराचन्द्र और डॉ० सय्यद मुहम्मद रजा नाईनी के सम्पादकत्व में तेहरान से प्रकाशित हुआ । इस ग्रन्थ का जर्मन भाषा में अनुवाद सन् 1882 में तथा लैटिन भाषा में 1901-1902 में अनुवाद प्रकाशित हुआ ।

श्रीमद्भगवाद्गीता – दारा ने इस ग्रन्थ का भी फारसी में अच्छा अनुवाद लिखा था जिसकी हस्तलिपि मिलती है जिसका उल्लेख डॉ० रमा चौधरी ने किया । हस्तलिखित प्रति इण्डिया ऑफिस ग्रन्थालय लन्दन में है ।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थ भी दारा ने लिखे जिनका विवरण इस प्रकार है :-

दाराशिकूह-दीवान – दाराशिकूह एक प्रभावी कवि भी थे । उनका एक दीवान तसव्वुफ और ब्रह्मज्ञान परक रचनाओं का है, जिसकी एक पाण्डुलिपि मिलती है जो अपूर्ण है । इसमें गजलें और रुवाइयाँ हैं । यह अप्रकाशित है ।

सूफियाना-खुतूत – दाराशिकूह ने अपने समय में सूफियों के नाम पत्र लिखे थे जो तसवुफ के समस्याओं तथा उनके विपय में हैं । इनमें से कुछ पत्र प्रकाशित भी हुए थे तथा कुछ पत्र संग्रहालयों में स्थित हैं । इनका एक पत्र संस्कृत भाषा में भी मिलता है ।

रिसालए मयारिफ या तरीकतुल-हक़ीक़ा – यह एक सूफियाना रिसाला है जिसमें कहीं रुवाइयाँ तथा अन्य कविताएँ हैं । यह रिसाला सन् 1895 में गुंजरानवाला में प्रकाशित हुआ जिसमें उर्दू अनुवाद भी है ।

मकालमये दाराशिकोह व बावालाल – यह रिसाला दाराशिकूह और प्रसिद्ध सन्त बावालाल बैरागी के प्रश्नोत्तर पर आधारित है । इस दोनों के प्रश्नोत्तर एक सभा में रहे होगें । इन प्रश्नों को प्रसिद्ध फारसीकवि रायचन्द्रभान ब्राह्मण ने इकट्ठा कर लिखा था । यह रिसाला 1885 ई. में दिल्ली से प्रकाशित हुआ था । इसका उर्दू में अनुवाद भी हुआ था ।

नादिर-अन्निकात – यह एक रिसाला है जिसे दाराशिकूह कृत बतलाया जाता है ।

सुलेख में दक्षता की बात दाराशिकूह के विवरण प्रसंग में कही जा चुकी है । यहाँ उनके स्वयं के दारा लिखित ऐसी कुछ पुस्तकों का विवरण इस प्रकार है :-

1. हिकमते अरस्तू – दाराशिकूह दारा प्रतिलिपि कृत हस्तलिखित । यह प्रति दक्षिण हैदराबाद के पुस्तकालय में है ।

2. दहपन्द अरस्तू – यह एक रिसाला है जिसे दारा ने लिखा था । इसकी प्रति विक्टोरिया मेमोरियल कलकत्ता के संग्रहालय में विद्यमान है ।

3. मसनवी सुलतान वलद – यह प्रति भी दारा द्वारा लिखी हुई है । यह एशियाटिक सोसायटी बंगाल, कलकत्ता के ग्रन्थागार में है ।

4. खमसय निजामी – दारा द्वारा लिखित यह प्रति है जिस पर दारा के द्वारा यह पुस्तक मुकीम तबरेजी जौहरी तखल्लुस को उपहार में दी गई थी । यह प्रति इण्डिया ऑफिस लायब्रेरी लन्दन में है ।

5. कुरआन मजीद – इस पवित्र ग्रन्थ की पांच सूरते दारा ने लिखी थी । ग्रन्थ अपूर्ण है तथा विक्टोरिया मॅमोरियल कलकत्ता में विद्यमान है ।

इन उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त भी दारा रचित फुटकल रचनाएँ, साहित्यिक रहस्यवादी कविताओं एवं उनके दारा लिखित पत्रों का भी एक बड़ा भाग सुरक्षित रूप में मिलता है जो उनकी चहुमुखी रूचि और कार्यो को दिखला रहा है । दारा के अनुगत भावना के क्रम में मुगल दरबार में स्थित एक अन्य सभासद ने भी योगवासिष्ठ का फारसी भाषा में अनुवाद किया । यह कार्य काशी के विद्वानों की सहायता से व्यवस्थितरूप में सम्पन्न हुआ था । दारा की भावना एवं प्रेरणा के कारण ही ये साहित्य लेखन के कार्य चलते रहे तथा यह कम महत्त्व की बात नहीं थी ।

समुद्र-संङ्गम –

जैसा कि बतलाया जा चुका है कि यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखित वही ग्रन्थ है जिसका लेखन पूर्व में फारसी भाषा में ''मजमा-उल बेहरीन'' नाम से किया गया था । यहाँ एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि फारसी भाषा वाले इस ग्रन्थ की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं परन्तु संस्कृत भाषा में लिखित ''समुद्र-संङ्गम'' की केवल एक ही प्रति प्राप्त हो पायी है जो पूर्ण एवं यथासम्भव शुद्ध भी है । इसको देखने पर यही प्रतीत होता है कि उस समय फारसी भाषा के पाठक अधिक थे तथा वे इस ग्रन्थ को संग्रह करने को भी अधिक उत्सुक रहे होगें । इसके विपरीत ग्रन्थरक्षा के प्रयोजन एवं विद्वत्परितोष के लिये एक

प्रति सुरक्षित रख ली गयी तथा शेप कुछ प्रतियाँ तैयार भी हुई होगी किन्तु वे इधर उधर विकीर्णता के कारण अव अप्राप्य हो चुकी है । जो प्रति आज प्राप्य है उसका लेखन वर्प विक्रम० सं० 1765 या ई. 1708 है जो कि इसके मूल लेखन काल से 51 वर्ष वाद (अर्थात् दारा की मृत्यु के वाद) हुआ था यह स्पष्ट है ।

समुद्र-सङ्गम ग्रन्थ के प्रस्ताव भाग में ही लेखक ने इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्यादि का उपक्रम कर यह दिखलाया कि यह ग्रन्थ उन तथ्यों पर प्रकाश डालने के लिये है जिन्हें अभी तक कम जाना गया था । यह है इस्लाम धर्म तथा वैदिक हिन्दू धर्म में मिलने वाली समानता के रूप में मूल तत्व की अवस्थिति । इसी तात्विक वात को अपनी आन्तरिक प्रेरणा एवं अपनी अनुभूतियों से सत्यापित कर मनन करते हुए तथ्य इस ग्रन्थ में रखा यह गया है कि इसका लाभ अपने सम्वन्धि पारिवारिक सदस्य या ऐसे जिज्ञासुजन को मिले और वे इन वातों से अभिभूत होकर अपना जीवन एवं कार्य करते रहें । यही ग्रन्थ के लिखने का मूलभूत उद्धेश्य भी है । इसके साथ ही यहाँ यह भी दिखलाया गया है कि इस प्रकृति ग्रन्थ का यह उद्धेश्य कदापि नहीं है कि धर्मों में आने वाले विविध विभिन्न मतों या उनके अनुगामीजन या विरूद्ध मतों या तत्वों को आधार वनाकर ऐसी वातों को साधारण रूप रख देना जिनसे विभेद को आधार या स्थान मिलता हो ।'' इस प्रकार दाराशिकूह ने यह ग्रन्थ अपने परिवार के सदस्यों या सम्वद्ध ऐसे ही व्यक्तियों के लिये लिखा था तथा यह सामान्य जन या विशेष जाति या वर्ग के लिये नहीं था । इसी वात को उपनिषदों के फारसी भाषा में अनुवाद ग्रन्थ ''सिर्रे-अकवर'' में भी इसी रूप में प्रायः दिखलाया गया था ।

''समुद्र-सङ्गम'' में ग्रन्थकार ने प्रतिपाद्य विषयों को इक्कीस विभागों में विभक्त कर रखा है । यदि इस ग्रन्थ की अन्विति को देखें तो प्रथम दृष्टि में ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी सम्वद्धता का क्रम अधिक सावधानी से नहीं लिया गया परन्तु फिर भी अपनी प्रकृति तथा स्वरूप की अपेक्षा के अनुरूप इसे वनाने की योजना स्पष्ट दिखलाई देती हैं । यह ग्रन्थ में दर्शनशास्त्रादि के वहुचिन्तित ऐसे तथ्यों (तत्वों) को अपने में समायोजित कर आधारभूत रूप में प्रतिपादन हेतु रखा गया है जो एक समस्या के रूप में अवस्थित रहे थे। ये तत्व हैं पंच महाभूत, जीव तथा ईश्वर । सामान्यतः भारतीय दार्शनिक इन्हें चित, अचित् और चिदचित् तथा व्रह्म या ईश्वर के रूप में मानते रहें हैं । दारा ने भी इन्हें विभागों में रखते हुए इनके विवेचन को वहुत सावधानी एवं तुलनात्मक स्थिति के साथ प्रस्तुत किया।

भारत के सम्राट अकवर ने अपने दरवार में विद्यमान चूडान्त विद्वानों और अधिकारीगण से परामर्श कर ''दीन-इलाही'' जैसे अभिनव सम्प्रदाय या धर्म की अभिनव कल्पना और योजना को प्रवर्तित कर उसे प्रचारित करने का उपक्रम किया था । इस सम्प्रदाय पर लिखित कोई ऐसा स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता यद्यपि इसकी चर्चा इतिहासविदों ने पर्याप्त रूप से की थी । सम्राट अकवर ने हिन्दू, वौद्ध, जैन, पारसी, सिख्ख, ईसाई तथा अपने धर्म इस्लाम की अच्छी वातों को चुनकर एक अभिनव सम्प्रदाय निर्माण करने की अभिलाषा की थी । इतना होने पर भी उस समय सम्राट ने कोई ऐसा विवरण या ग्रन्थ नहीं लिखवाया या उसके वाद छोड़ा

जो संसार के विभिन्न धार्मिक एवं दार्शनिक चिन्तनों एवं प्रतिक्रियाओं पर तुलनात्मक विवरण रखता हो । इसके अतिरिक्त इन धर्मों की गुणगत विभिन्न विशेषताओं के रहने से आधारगत किसी भिन्नता को मानकर एक स्वतन्त्र धर्म या सम्प्रदाय भी इसे नहीं माना जा सका । अतएव दीन-इलाहीं एक सूचनात्मक स्थिति के रूप में ही बनकर रह गया । जिसमें विभिन्न धर्मों के सिद्धान्तों या पद्धतियों में विद्यमान मूलभूत ऐसे तथ्य थे जो यहाँ रखने के लिए अनुमोदित रहे होंगे । अतएव सम्राट अकबर का प्रवर्तित दीन इलाही विविधधर्मों की नैतिक पद्धतियों की समानता को लेकर निर्मित ऐसा धर्म था जिसकी बुनियाद में विविध धर्म के तत्व समाहित थे । दूसरे शब्दों में यह विश्व के विभिन्न धर्मों तथा दार्शनिक सिद्धान्तों से मिश्रितरूपवाला एक पिण्डीभूत स्वरूप का धर्म हो । इस धर्म का ऐसे मूलभूत एवं नैतिक इन गुणों से निर्माण किया गया था । जैसे-स्वातन्त्र भावना, त्याग, व्रत यां उपवास का आचरण, शान्ति एवं सहिष्णुता, विवेक, विनय, भातृत्व, ईश्वर में आस्था तथा लगाव रखना, ईश्वर प्राप्ति की कामना या अभिलाषा करना, ईश्वर का एकत्व एवं एकीभाव तथा ईशभक्ति ।

इस प्रकार यदि यह सुधार की भावना को लेकर वि श्व-नैतिकता को एक मिश्रित एवं विलक्षण रूप में प्रख्यातित करना था । जव ऐसा हुआ तो उसने बजाय इस प्रख्यापना से प्राप्त कीर्ति के एक अपकीर्ति या असफलता की ही प्राप्ति की जिससें इस प्रयास को ही उसे छोड़ना पड़ा तथा यह तभी से कीर्तिशेष हो कर रह गया था । परन्तु अपने ही वंश के होने वाले दारा ने "दीनइलाही" के ऐसे समीकरणगत प्रयत्न को लगभग एक शती तक ठंडा पड़ जाने के बाद सम्राट् अकबर के ही प्रपौत्र दाराशिकूह ने उससे एक कदम आगे बढ़ाकर केवल इस्लाम तथा वैदिक हिन्दू धर्म को ही तुलनात्मक संकलन हेतु लिया जो तत्कालीन शासक तथा प्रजा के अपने धर्म थे । इन दोनों धर्मों में से भी चुनकर बारीकी से वे ही बातें लीं जो इन दोनों में एक समान या मिलीजुली थी उन्ही को उनने प्रकाशित कर प्रस्तुत किया । उसने केवल समानता के सूत्र को ही लिया और ऐसी दूसरी बातों पर विचार नहीं किया जिनसे इन दोनों धर्मों में दूरीं या विषमता दिखती हों यद्यपि ऐसी बातें भी इन दोनों में अनेक स्थानों पर मिल सकती थीं । इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि उसने यह सभी कार्य अपनी विषम राजनीतिक स्थिति में किया था, जिससे न कोई विद्वत्ता प्रदर्शन की तथा किसी अध्ययन या तर्क वितर्क की कोई चेष्टा रही हो । इतना रहने पर भी उसने स्वयं इस अतिकठिनकार्य को जैसे दोनों धर्मों की समानता या भिन्नता को शुद्ध दार्शनिक दृष्टि से रखना हो, ऐसे धर्मों की जहाँ उस समय विभेद या दूरी ही अधिक हों । यहाँ यह बात कहना अनुपयुक्त होगा कि इन दोनों धर्मों में सचमुच कोई समानता की स्थिति है अथवा इन दोनों में कोई तार्किक आधार ऐसा था कि जिससे इनकी समानता, सामज्जस्य या संश्लेषात्मकता का कोई समायोजन है । क्योंकि ऐसी स्थिति में सिद्धान्तों को तर्क वितर्कों से प्रतिष्ठित निरस्त या खण्डित किया जा सकता है, परन्तु ऐसी बात न होकर इससे भी अधिक यहाँ सृष्टा की अन्तरात्मा की वह प्रेरक शक्ति ही थी जो यदि अपने छोटे रूप में ही रही थी परन्तु यह अपने ही पूर्वपुरूष अकबर महान् जैसे विशाल व्यक्तित्व के उपक्रम से तुलना की उपयुक्तता अवश्य रखती थी, क्योंकि

ऐसा उपक्रम भी मुगल-इतिहास में इससे पूर्व कहीं नहीं हुआ था । इसका दूसरा कारण यह भी है कि धर्मों की समतायुक्त परिवीक्षा के क्रम में इस्लाम धर्म तथा हिन्दू धर्म की स्थिति प्रायः अपने स्वरूप में एक दूसरे से भिन्न रूप में आद्रत, तथा अवस्थित रही तथा कहीं कहीं यह एक दूसरे से विपरीत भी रही थी यह स्पष्ट है । इतना रहने पर भी दाराशिकूह ने कभी यह नहीं सोचा कि इन दोनों धर्मों को मिला कर एक धर्म की संरचना की जाए । इसका एक कारण यह भी है कि यह कार्य उस समय प्रासंगिक कम था तथा यह आशा भी नहीं थी कि ऐसा कार्य प्रचारित होकर आगे बढ़ जाए । अतएव उसने केवल दोनों धर्मों के कुछ तथ्यों को प्रस्तुत कर इन दोनों धर्मों के समाजों के समक्ष एक वैचारिक ज्योति प्रस्तुत करने का उपक्रम किया अपने ग्रन्थ लेखन के माध्यम के दारा । इसी कारण उसने अपने इस ग्रन्थ को दो भाषाओं तथा दो पाठों में उपस्थित किया जिनमें प्रथम अपनी प्रचलित राजभाषा फारसी में तथा दूसरा संस्कृत भाषा में रखा । उसके ऐसे कार्य से उसकी उदारता, श्रम, बौद्धिक तत्परता तथा अपने निश्चयों की निर्भान्त एवं भयरहित उपस्थापना की दृढ़ता जैसे गुण परिलक्षित होते हैं । यहाँ तक कि ऐसे ग्रन्थ के नामकरण में भी उसकी यही प्रत्युत्पन्नता दिखलाई दी जहाँ फारसी पाठ का नाम फारसी भाषा में ''मजमा-उल-बेहरीन'' तथा संस्कृत भाषा के पाठ का नाम ''समुद्र-संङ्गम'' (जो फारसी के ग्रन्थ का अनुवादमय अभिधान है) रखा गया।

अपने नामकरण के अनुरूप यह ग्रन्थ भी मुस्लिम तथा हिन्दुओं के ह्रदयों के संगम की भावना के अनुरूप दोनों में प्रेम तथा भाईचारा के सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकता के रूप की भी उपयुक्ता लिये हुए है जो इस ग्रन्थ के उद्धेश्य के रूप में प्रकाशित हो रहा है । इस ग्रन्थ को यदि लेखक इस विचार विन्दू से देखें तो यह ग्रन्थ देश के सांस्कृतिक प्रसाद पर एक अनुपम रत्न सा चमकता दिखलाई देगा और इसका यह सात्विक प्रकाश अपनी दीप्तिमय शुभ्रआभा का आलोक सदा विखेरते हुए अपने उद्यम की सफलता को प्रदर्शित करता रहेगा जो हमारे देश के लिए तो गौरव का विषय बनकर इसे स्थिर रखेगा ।

प्रकृत संस्करण –

दाराशिकूह रचित ''समुद्र-संङ्गम'' के मूल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में किये गये व्याख्यात्मक अनुवाद के साथ प्रस्तावना आदि सहित यह संस्करण प्रस्तुत करते हुए हर्ष तथा सन्तोष का अनुभव हो रहा है । इस कार्य से वर्षों की इस ग्रन्थ की मांग की पूर्ति भी होगी ऐसा विश्वास है । इस ग्रन्थ का सम्पादन मूल संस्कृत में लिखित तथा उपलब्ध एक मात्र हस्तलिखित मातृका को लेकर किया गया है तथा उसी का हिन्दी अनुवाद भी किया है । इस ग्रन्थ की अंन्य कोई हस्तलिखित मातृका कहीं नहीं मिलीं केवल एक प्रति भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पुणे (महाराष्ट्र) के हस्तलिखित ग्रन्थागार में विद्यमान है । यह प्रति प्राचीन किन्तु उत्तम स्थिति में देवनागरी लिपी में देशी कागज पर लिखी हुई है जिसको बम्बई राज्य (महाराष्ट्र शासन) ने वर्ष 1881-92 में संग्रह कर उसे वाद में भाण्डारकर संस्थान को दे दिया था । इसकी पत्र संख्या 11 है तथा इसका लेखन काल वर्ष 1765 संवत् (या 1708

ईसवी) है । इस ग्रन्थ का मूल संस्कृत तथा अंग्रेजी अनुवाद प्राच्यवाणी कलकत्ता से वर्ष 1954 ई० में प्रकाशित हुआ था जो अब अप्राप्य हो गया है । अतएव इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्प्रति इसी लिए प्रासंगिक है कि इससे आवश्यक रूप से वर्तमान-साहित्य चिन्तनधारा को अग्रप्रसारित करने में सहायता मिलती है ।

आभार– इस ग्रन्थ के लेखन एवं प्रकाशन में लेखक को जिन स्रोतों से सहायता मिली उनमें सर्वप्रथम में डॉ० जे.बी. चौधरी **J.B. Chowdhari** का सर्वप्रथम उल्लेख आवश्यक मानता हूँ । इनके द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित 'प्राच्यवाणी' पत्रिका में समुद्र-संङ्गम का मूल संस्कृत तथा अंग्रेजी प्रस्तावना का 1940 में प्रकाशन हुआ था तथा इसी समय से यह चिर्चित रहीं । भाण्डारकर शोध संस्थान पुणे के अधिकारीगण का भी मैं आभारी हूँ जिनने इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि भेजी । मैं कालिदास अकादमी के संचालक प्रोफेसर श्री निवास जी 'रथ' का भी कृतज्ञ हूँ जिनके उदार सहयोग से ग्रन्थ पूर्ण हुआ । मैं अपने सहयोगी डॉ० जगदीश शर्मा; उपसंचालक तथा क़ार्यालयीन श्री अनिल बारोठ को भी धन्यवाद देता हूँ जिनने टंकण कार्य कर इसकों तथा श्री भाई मुश्ताक खान ने भी सहयोग दिया । इसके अतिरिक्त भारतीय विद्या प्रकाशन के व्यवस्थापक भाई किशोर चन्द्रजी जैन का भी कृतज्ञ हूँ । जिनने अपने प्रकाशन में शीघ्रता से इस उपयोगी ग्रन्थ को मुद्रित कर प्रकाशित किया । मैं इस सात्विक सहयोग के लिए इन सभी सुधीजन का आभार मान कर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । अन्त में सम्पूर्ण जगत् के वन्दनीय प्रभु महाकालेश्वरदेवाधिदेव के प्रणम्य श्री चरणों में प्रणामाञ्जलि सादर अर्पित कर अपने इस वक्तव्य को पूर्ण कर रहा हूँ ।

कालिदास अकादेमी
उज्जैन, वि.सं. 2051

विदुषां वशम्वदः
आचार्य बाबूलाल शुक्ल, शास्त्री
(व्याख्याकार तथा ग्रन्थ सम्पादक)

राजकुमार–मुहम्मद–दाराशुकोह प्रणीतः

समुद्र-सङ्गमः

(सटिप्पण सङ्गमनीनाम हिन्दी-व्याख्यानेनानुगतः)

उपक्रमः

सर्वत्रप्रकटः सः सर्वावभासः स आदिः सोऽन्तस्तदतिरिक्तं वस्तु अन्यन्नास्तीति -

प्रतिवेशी सवासी च सहगः सर्वमेव,सः ।
पटच्चरे दरिद्रस्य क्षौमे राज्ञः सः सर्वतः ।।१।।
भाति संसदि भेदोऽयमभेदो रहसि स्फुटः ।
ईशस्यं शयनं भूयस्तच्छयः सर्वमेव सः ।।२।।

प्रणामानामानन्त्यं परमंप्रकाश–प्रकाशके जगत्सृष्टिनिमित्तेऽस्माकं सिद्धानां सिद्धे परमेश्वरेण सत्कृते सम्मानिते च तथा पवित्रतमे तत्परिवारे महत्तरे तत्प्रतिनिधिभूते च ।

विभाग-प्रथम

ग्रन्थोपक्रम

वह परमेश्वर सभी स्थानों पर विद्यमान एवं सभी का अवभासक या संचालन कर्ता और सम्पूर्ण सृष्टि कां आदि एवं अन्त में शेषभूत रहनेवाला है । जिसके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसी वस्तु दूसरी नहीं है ।

वह ईश्वर ही सदैव हमारे साथ रहने वाला पड़ोसी है जो सदैव हमारे साथ चलने वाला है और फिर भी सबमें प्रविष्ट है । वह राजा और रंक में इस प्रकार है कि दरिद्र के चीथडो में तथा राजा के रेशमी परिधान में स्थित हो सर्वव्यापी है। वह प्रत्यक्षतः समुदाय में हमसे

भिन्न अवभासित होकर भी एकान्त में अभिन्नता दिखलाने वाला होने से वही सब कुछ भी है[1] क्योंकि उसका जगत् शयन तथा वह उसका अधिष्ठान भी है ।[2]

जो परमतत्व का प्रशासक, जो इस जगत सृष्टि का निमित्त कारण है तथा अतीत के सभी देवदूतो में पूर्ण समग्रता लियेहुए हैं । अतः जो परमेश्वर के पक्षधर रहने से उनके परमप्रिय तथा उनसे सत्कृत या सम्मानित रूप में मान्य है । ऐसे हमारे परमसिद्ध पैगम्बर मुहम्मद तथा उनके समस्त पावन परिवारजन, उनके प्रतिनिधि महापुरूष तथा सन्देश-धारकों के प्रति प्रणत भाव से बार-बार वंदना करता हूं ।

अथ कथयति वीतराग-विगतशोक-सन्दोह मुहम्मद दाराशुकोह एवं यद्विज्ञाय सकलतत्वं निर्णीय सत्यैकात्मवादतात्पर्यमासाद्य च भगवन्महाप्रसादं तदनु चैतद्विचारमध्ये प्रविष्टं मया यदन्तं प्राप्नुयामभिद्रायस्य सिद्धानां निश्चेतृणां वैदिकानामनादिकुलजानामिति ।

अथ च कैश्चित्कैश्चित् परिपूर्णैः वैदिकैः सह विशेषतश्चैतन्य-स्वरूपज्ञानमूर्ति-सदगुरु-श्रीबाबालालस्य अन्तिके तपस्यायाः ज्ञानस्य-सौबुध्यफलस्येश्वरप्राप्तेः शान्तिश्चश्च प्राप्तवान् तेन च सह पुनः पुनः संगतीर्गोष्ठीश्चाकरवं परं परिभाषाभेदातिरिक्तं कमपि भेदं स्वरूपावाप्तौ नाऽपश्यम् । अतश्च द्वयोरप्येकवाक्यतामकरवम् । ततश्च सत्यावाप्त्याधिकारिभिरवश्यं ज्ञातव्यानां सफलानां कतिपयवाक्यानां सारस्य सङ्ग्रमकरवम् । ज्ञानिनोर्द्वयोरपि मतसमुद्रयोरिह संगम इति चास्य नाम चास्थापयम् 'समुद्रसंगम' इति ।

तदनन्तर इन्हीं पैगम्बर की उपासना में लीन तथा समस्त सांसारिक आकर्षणों तथा दुःखों के स्पर्श से रहित एक फकीर जैसा मुहम्मद दाराशिकूह कहता है कि समस्त तत्वों के सारभूत एक मात्र तत्वस्वरूप, को जानकर अपने में धारण करते हुए आदर्श भूत एकात्मवाद[3] को पूर्णतः

---

१. वह ईश्वर जो हम से भिन्न प्रतीत होता है किन्तु रहस्य रूप में ध्यान के समय वही अपने समीप तथा अभिन्न हो जाता है ।

२. तुल० 'सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः' -- (श्वेता. उप. ३-/११)

३. एकात्मवाद या एकेश्वरवाद –केवल एक परमेश्वर के अस्तित्व के अतिरिक्त किसी दूसरे की सत्ता को मान्य नहीं करने वालों का सिद्धान्त । सूफियों की भी ऐसी ही मान्यता थी। भारतीय वेदान्त भी 'नेह नानास्ति किंचन को मान्यता देता है किन्तु भिन्न तर्क एवं पारम्परिक आधारों को लेकर ही ।

हृदयंगम करने के उपरान्त परमेश्वर से प्राप्त परमानुग्रह के उपरान्त मैंने अनुसन्धान आरम्भ किया है । अतः सर्वप्रथम में ऐसे वैदिक सिद्धों के, इस विषय पर वास्तविक विचारों से अवगत हुआ जो पूर्णता-सम्पन्न एवं सत्य के साक्षात्कार से युक्त अनादिकाल प्रवाह में चलते रहने पर भी सनातन-भाव में अवस्थित थे । ऐसे सिद्धान्तों को समझने के लिये मैं विद्वानों के, इन विषय पर, वास्तविक विचारों से स्वयं को अवगत करा पाया जो कि पूर्णता-सम्पन्न हैं तथा जिन्होंने वास्तव में ऐसे सत्य का साक्षात्कार किया है, जो अनादि काल से सनातनभाव में प्रवहमान है । इसके लिये मैं वार वार अनेक वैदिक विद्वानों से मिलता रहा तथा उनसे इस विषय में चर्चाएं कीं । ऐसी विभूतियों में विशेषकर मेरे पूज्यतम श्री गुरु[1] बावालाल का भी जो बड़े सार ग्राही एवं ज्ञानी हैं तथा जिनने ईश्वरीय योग के ज्ञान, ध्यान, कल्याण तथा परमेश्वर के समझने में पूर्णता प्राप्त की । इन चर्चाओं के बाद मुझे परमसत्य के विषय (ईश्वर) में केवल शाद्धिकविभेद के अतिरिक्त हिन्दु और मुस्लिम सन्तों के विचारों में कोई अन्तर प्राप्त नहीं हुआ ।

इसी कारण मैंने हिन्दू तथा इस्लाम 'दोनों' धर्मों को एक दूसरे से मिलाते हुए गंभीरता से अध्ययन किया । इसके बाद साथ ही विभिन्न सम्बद्ध तथा उपयोगी शास्त्रों का संग्रह तथा अनुशीलन भी किया, जिनका परमतत्व को जानने में निश्चितरूप से अध्ययन सहायक हुआ था । इस प्रकार यह ऐसे दो समुद्रों का संगम बन गया जिसमें हिन्दू तथा मुस्लिम धर्मों के समानता वाले विचारों की एक साथ स्थिति बनती या चलती रहती' है । इसी कारण इस प्रकृत ग्रन्थ का नाम भी "समुद्र-संगम" रखा गया है ।[2]

इत्थं किलोपदेशो महानुभावानां यन्निर्मत्सरतया तत्वविवेचनं सकलवेदान्तानां प्रयोजनम् । अतो यः कश्चिद् विवेकी ज्ञानी च स एंव जानाति तत्वनिर्णयतलस्पर्शे कीदृशः श्रमः इतिं । निश्चयेन विद्वाँसो ज्ञानिनश्च बहुतरं सुखमित (रथा) आप्स्यन्ति । न प्राप्स्यन्ति च भेदवादिनः कुण्ठितमतय इति स्वानुभवानुसारेण निर्णीय तत्वार्थं स्वकुटुम्बेषु

---

१. दारा शिकूह तत्कालीन सिद्ध सन्त बाबालाल के परम भक्त और शिष्य थे । इनके दूसरे नाम दयाललाल, लालस्वामी तथा लालदास बाबा भी नाम थे । ये तत्कालीन पंजाब के महान् सन्तों में एक रहे थे जिनका दारा शिकूह ने पंजाब और काश्मीर में दर्शन कर भेंट की थी और उनसे हिन्दू-दर्शन तथा धर्म के विषय में जानकारी प्राप्त की थी । इन घटनाओं का दारा के निजी सचिव चन्द्रपाल ने विवरण लिखा था । जो कि "मुकालिमा-इ-दारा शिकूह बा बाबालाल" नामक फ़ारसी ग्रन्थ में विद्यमान हैं ।

२. यही समुद्रसंगम ग्रन्थ कुछ थोड़ी भिन्नता के साथ फारसी भाषा में भी लेखक ने पूर्व में बनाया था तथा जिसका नाम "मजमा-उल-बेहरीन" रखा था ।

अनुकम्पयां कृतोऽयमारम्भः, न पुनरज्ञानिनो विभिन्नमतसम्बन्धिनो बोधनेन मम प्रयोजनम् ।

अन्यच्च महापुरुषं ख्वाजेअहरार-नामा शुद्धान्तःकरणः किल आज्ञप्तवान् 'यद्यहं जानीयां कश्चन निरीश्वरोऽपि कथाख्यदेश-स्थितोऽपि मनोऽनुरन्जनशब्दैस्तत्ववार्ता वदतीति । तर्हि तत्र गत्वा श्रोष्यामि शिष्याम्यनुनेष्यामि च तम् । अत्र परमेश्वरादेव मम सामर्थ्यं, परमेश्वर एव च मे सहायः ।

महानुभाव गुरुजन का परम्परागत ऐसा निर्देशंभूत आदेशपूर्ण उपदेश है कि तत्वान्वेषण हेतु पवित्रभावना से द्वेष या आग्रह रहितं होकर धर्मग्रन्थों का अनुशीलन किया जावे, जो कि सभी का प्रयोजन भूत भी है । अतः यहां भी यही बात प्रासंगिक है कि जिसे उत्तमज्ञान प्राप्त है वही सत्यभूत तत्व के विनिश्चय की कठिनाई को समझता है 'तथा (उससे) परिचित भी है' । अतः यह भी निश्चित है कि विद्वान् तथा सुधीजन मेरे इस प्रकार के श्रम से विनिर्मित ग्रन्थ से अतिशय सन्तोष का अनुभव करेंगे । परन्तु जो संकुचितमति के विद्वान् (आग्रही) है, वे धर्म के मूलभूत विभेदों पर ही बल देकर अपनी बात पर टिके रहेंगे; अतः उन्हें इस ग्रन्थ की अच्छाई या गुणों का भान नहीं हो पाएगा । मैंने अपनी अन्तःप्रेरणा तथा आत्मानुभव के पश्चात् सत्य का जो साक्षात्कार किया था, इसी कारण में इस ग्रन्थ की रचना में प्रवृत हुआ जो चिन्तनगत विशिष्ट श्रम के परिणाम-स्वरूप लाभकारी वन गया है । यह विभिन्न मतों से सम्बद्ध रूढियों से ग्रस्त व्यक्तियों को प्रवुद्ध करने के प्रयोजन से निर्मित नहीं है । इसके अतिरिक्त ऐसे कार्य पर निर्मल चित्तवाले महान् सन्त "ख्वाजा'अहमंद" के ये शब्द सदा सुनाई दे रहे है कि "यदि मैं किसी ऐसे ज्ञास्तिक को भी जान लूं जो कि बडे सुन्दर शंब्दो में सत्य 'तत्व' की व्याख्या कर रहा है तो भी मैं उसकू पास पहुंचूंगा फिर चाहे वह किसी भी अगम्य देश तक का निवासी ही क्यों न रहे । मैं उसके भी विचारों को सुनूंगा और बाद में उसे समझ कर उस पर तर्क या विचार करूंगा । इसका यही आशय तथा कारण है कि मुझे केवल परमेश्वर से ही अभीष्ट शक्ति प्राप्त होती है तथा केवल वही मेरा सहायक भी है ।

विभाग-द्वितीय -

भूततत्व (अनासीर)[२] विवरण -

अथ अनासीरापरपर्याय-भूतव्याख्या । ज्ञानीत भूतानि पञ्च अनुभूयमान-वस्तु समवायिकारणान्येतानि । तत्राद्यम् -उन्सूरेआजमं,

---

१. एक सूफी सन्त का नाम जो समरकन्द के निवासी तथा एक विद्वान् साधक भी थे।

२. फारसी भाषा का शुद्धशब्द 'अनासीर' जिसका पर्यायार्थ भूततत्वविचार है ।

पदाभिधेयम् । द्वितीयं वादपदाभिधेयम् । तृतीयमातश-पदाभिधेयम् । चतुर्थमाब्-पदाभिधेयम् । पञ्चमं षोकपदाभिधेयम् । एतान्येव मुनिभिराकाशं वायुस्तेजो जलं पृथिवीति व्यवहृतानि ।

तत्राकाशं त्रिविधमुक्तम् । भूताकाशश्चिदाकाशश्चित्ताकाश इति। तत्र सर्वभूतध्व्यापको भूताकाशः, ब्रह्माण्डव्यापक-श्चित्ताकाश, सर्वव्यापकः सर्वतः स्थितश्चिदाकाशः । स चाजन्यः । तज्जन्यत्वंस्य तद्विनाशस्य च वेदेऽस्मद्वेदे षा क्वचिदपि कण्डिकायामप्रतिपादनाद् युक्त्यसहत्वात् च । चिदाकाशात् प्रथमम् 'इश्क'' इति पदार्थोऽभूत् । स च वैदिकमुनिभिर्मायेति उच्यते । यदाह परमसिद्धो भगवद्वाक्यम् -''अहं गुप्ताकार-स्थितः प्रसिद्धः स्याम् इतीच्छया सृष्टिं कृतवान् '' इति। तस्या मायायाः सकाशा-ज्जीवात्मा प्रादुर्बभूव । स एव सिद्धानां सिद्धस्य तत्व-मिति वदन्ति । अयमेव वैदिकमुनिभिर्हिरण्यगर्भ इत्युच्यते । स एव व्यञ्जनया 'अमा' इत्युच्वते ।

भूततत्व को ''अनासीर'' कहते हैं जिनकी संख्या पाँच मानी गयी है । विश्व के सभी पदार्थ या वस्तु इन्हीं भूतों से निर्मित या उत्पन्न होते' है । इनके क्रमशः नाम है - १. उन्सूरे-आजम २. बाद ३. आतश ४. आव तथा ५. बोक (खोक) हैं जिन्हें भारतीय मुनियों ने आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथिवी नामों से वतलाकर कहा है ।

इन भूतों मं सर्वप्रथम आकाश हैं जो तीन प्रकार का माना गया है । ये है (१) भूताकाश, (२) चित्ताकाश तथा (३) चिदाकाश । इनमें सभी भूतों में रहनेवाला ''भूताकाश'', समस्त ब्रहमाण्ड में व्याप्त रहने वाल ''चित्ताकाश'' तथा जो सभी वस्तु तथा स्थानों में स्थित रहता हो वह ''चिदाकाश'' माना गया - है ।

यह चिदाकाश सनातन नित्य तथा अजन्य माना गया है । ''चिदाकाश'' के जन्य होने या विनाश का भारतीय ग्रन्थ वेदादि में तथा हमारे वेद (कुरआन) में किसी कण्डिका में विवरण तथा प्रतिपादन इस प्रकार नहीं आया । यह युक्ति विरूद्ध है । (एवं सर्वसम्मत नहीं है ।)

चिदाकाश से सर्वप्रथम ''इश्क'' नामक पदार्थ उत्पन्न हुआ जिसे वैदिक ऋषि ''माया''[२] कहते हैं । इसे इस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद ने ईश्वर के ही शब्दों में इस प्रकार

---

१. वैशेषिक तथा न्याय दर्शन में भूत या पदार्थ की उत्पति में तीन कारण माने जाते हैं- (१) समवाय (२) असमवाय तथा (३) निमित्त कारण । इनका विवरण सम्बद्ध शास्त्रों में विस्तार से किया गया है ।

२. फारसी आदि भाषाओं में 'इश्क' शद्ध का अर्थ अनुराग है किन्तु दर्शन में मान्य माया शद्ध के पारिभाषिक रहने से, इसे इसी अर्थ में नहीं रखा जा सकता है, यह यहाँ मोह के आकर्षण के लाक्षणिक आशय का ही अर्थ-विस्तार के कारण प्रयुक्त शद्ध के अर्थ में माना गया है ।

बतलाया - "मैं सर्वत्र अदृश्य रूप में रहा पर बाद में प्रसिद्ध या प्रकट होने की इच्छा होने पर मैंने सृष्टि का निर्माण किया । माया के अंशावतार रूप में जो आत्मा (रूहे-आजम) उत्पन्न हुई वही अवतारी पैगम्बर मुहम्मद की आत्मा या अवतार है जिसे उपनिषद् आदि के वैदिक ऋषि "हिरण्यगर्भ"[1] कहते है । यह सृष्टिक्तम के रूप में अमा भी माना गया ।

अतः परं वायुच्व्यायाख्या-तत्र वायुर्नाम परमात्मनोर्निःश्वसितमिति वदन्ति । निश्वासरूपो वायुरुत्पन्नस्तस्य श्वासस्य शुद्ध-चैतन्येन गुप्तकाले सृष्टयर्थं निरोधः कृतः । तत उष्मा निस्सृतः । अतो वायोस्तेजस उत्पत्तिः तस्मिँश्च निश्वसित आत्मीयंत सृष्टंत्त्वति (?) शीतले जले सति तेजस, सकाशाज्जलस्योत्पत्तिः । वायुतेजसोः सूक्ष्मत्वेनाप्रत्यक्षत्वात् जलस्य स्थूलतया प्रत्यक्ष-त्वात् कैश्चिदुक्तम् जलस्य प्रथममुत्पत्तिरिति । जलानन्तरं पृथिवी । इयं पृथिवी जलस्य शरस्थानीया । यथा दुग्धस्याधस्थात् अग्निज्वालने दुग्धे शरो भवतीति । किमह वेद्मि अनन्तार्णवसंज्ञकस्य बाष्पोऽन्तरिक्षं पृथिवी शरश्च ।

वायु-इस क्रम में अब "वायु" आता है, जो परमात्मा का निःश्वास कहा गया है । जैसा कि कहा है 'वायु निःश्वास के रूप में उत्पन्न होता है । तेजस् या अग्नि-शुद्धचैतन्य (परमेश्वर) ने जब सृष्टि के प्रयोजन से उस श्वास का निरोध किया जिसमें उष्णता का गुण विद्यमान है वही तेजस् या अग्नि है । इसी कारण अग्नि वायु से उत्पन्न मानी जाती है । आप[2] या जल-परमेश्वर के निःश्वास रूपी भूत के शीतल हो जाने पर सृष्टि के प्रयोजन के लिए तेज से जल की उत्पत्ति हुई है । वायु तथा अग्नि दोनों ही अतिसूक्ष्म रहने के कारण अप्रत्यक्ष है परन्तु इनकी तुलना में जलतत्व स्थूल होने से इन्द्रियग्राह्य तथा प्रत्यक्ष माना गया । कुछ मनस्विजन की मान्यता है कि सर्वप्रथम सृष्टि क्रम में जल की उत्पत्ति हुई तथा इसके अनन्तर ही अग्नि (आदि) भूतों उत्पन्न हुई है । परन्तु यह मत मान्य नहीं हो पाया ।

पृथ्वी- जल के अनन्तर जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई. । जिस प्रकार दूध को गर्म करने पर उसकी ऊपरी सतह पर मलाई जम जाती है उसी तरह पृथ्वी जल पर जमी पगड़ी (शर) के समान है (अर्थात जल की सतह पर जम जाने वाला तत्व "पृथ्वी[3] है) जैसा कि कहा भी है-"क्या मैं जानता हूँ कि अनन्त सागर नाम वाले तत्व का वाष्प अन्तरिक्ष तथा शर पृथ्वी है"।

---

१. हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा के रूप में भारतीय वेद तथा दर्शन में मान्य है । यथा-'हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे- (ऋग्वेद) तथा 'हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्' (श्वेता. उप. ३ (४))इत्यादि ।

२. तुल - 'आपो वा अर्कस्तदपां शर आसीत् (बृह० उप० १.२.३.) जलतत्व का रूप उज्वल (भास्वर) मान्य है ।

३. तद् यदपां शर आसीत् समहन्यत । सा पृथिव्यभवत् । (बृह० उप० १.२.३.)

एतेषां भूतानां महाप्रलयकाले त्व्युत्क्रमेण लयः । तत्र प्रथमं पृथिव्या जले लयः, ततो जलं तेजसः शुष्यत् तेजसि लीयते । ततो वायुनाऽभिहन्यमानं लेजः वायौ लीयते । ततो वायुः 'उन्सूरंअ-आजमपदाभिधेयेन सह चिदाकाशे लीयते । अस्मद्वेदे श्रूयते-'सर्ववस्तु प्रणश्यति विना परब्रह्मणो मुखात्मक-चिदाकाशम् '' । अन्यच्चास्मद्वेद्वे श्रूयते-'सर्वं पृथिवीसंस्थितं वस्तु नश्यति नित्यं तिष्ठति तदीयपरब्रह्मणो रजस्तमोगुणरूपयुक्तस्य मुखम् । सर्ववस्तुविनाशप्रतिपादकेऽस्मिन् कण्डिकाद्वये मुखपदस्य प्रसङ्गः कृतः । तस्य प्रयोजनं चिदाकाशोऽविनाशीति । यद्यत्र मुखपदं न स्यात्तदेत्थमुक्तं स्यात् -'सर्वं वस्तु विनश्यति पर-ब्रह्मणि । अतोऽत्र मुखपदप्रसङ्गश्त्तेचदाकाश (नित्यता) निमिश्चिच तिष्ठते; यतश्चिदाकाशं शुद्धचैतन्यस्य सूक्ष्मशरीरस्थानम् । पृथिवीन्तु मुनयो व्यवहारे देवीति वदन्ति यतः सर्वं वस्तु तया प्रसूयते । पुनः सर्वं वस्तु तस्यां लीयते । तथा ऽस्मद्वेदे श्रूयते-तस्याः पृथिव्याः सकाशादस्माभिर्भवतां सृष्टिः कृता पुन-तस्यामेच भवन्तो मया नेयाः पुनः पृथिव्याः सकाशाद् बहिरानेयाः' इति ।

प्रलयक्रम-महाप्रलय के समय ये ही पाँच भूत सृष्टिक्रम से विपरीत क्रम वाले होकर क्रमश लीन हो जाते है । अतः सर्वप्रथम पृथ्वी का जल में लय होता है फिर अग्नि को बुझा कर अपने में जल लीन करता है और वायु फिर उन्सूरआजम के साथ चिदाकाश' में लीन हो जाता है । हमारे वेद (कुरआन) में कहा गया है कि -''सभी वस्तु केवल परब्रह्म के मुखस्वरूप चिदाकाश को छोड़कर विनष्ट हो जाती है'' । इसी प्रकार अन्यत्र भी इसी में बतलाया गया है कि -''विश्व के समस्त पदार्थ नाशवान् या अनित्य है किन्तु परब्रह्म जो सात्विकयजस एवं तामस गुणवाला है नित्य या शाश्वत है ।

इस प्रकार सभी वस्तुओं (भूतों) के प्रलय (विनाश) की इन दोनों कण्डिकाओं के द्वारा पुष्टि की गई । यहां एक ही रूप में दोनों धर्मो के ग्रन्थों में समान विवरण है । इन कण्डिकाओं में प्रयुक्त मुख्य शद्व का प्रयोजन यही है कि चिदाकाश ही अविनश्वर है । यदि यहाँ मुख

---

१. इसका शाद्विक ही तात्पर्य यहाँ समझना चाहिए कि अन्त में आकाश तत्व भी परब्रहम में विलीन हो जाना है । प्रायः सृष्टि क्रम में अनुलोम स्थिति तथा प्रलय दशा में विलोम-क्रम की क्रियाएँ या परिणाम मान्य है ।

पद न रखते तो यही कहा जाता है परब्रह्म में समस्त पदार्थो का विलय होता है परन्तु यहाँ मुखशद्ब का निवेश चिदाकाश की नित्यता के लिए किया गया क्योंकि चिदाकाश शुद्धचैतन्य ब्रह्मा का सूक्ष्म शरीर (भूत) रूप है तथा अविनश्वरता का साधक है ।

भारतीय ऋषि मुनि पृथ्वी को व्यवहार में देवी कहते हैं क्योंकि समस्त पदार्थो का प्रसव इसी से माना जाता है । तथा ये सभी पदार्थ अन्त में इसी में लय भी प्राप्त करते है । जैसा कि हमारे वेद में (भी) कहा गया है -"इसी पृथ्वी से मैंने तुम लोगों का निर्माण किया था ओर फिर इसी पृथ्वी में मुझे आप सभी को ले जांना हे और बाद में फिर इसी पृथ्वी से सृष्टि हेतु (सभी को) वाहर लाना है ।

विभाग तृतीय –

इन्द्रिय तथा उनके विषयार्थ का सृजन – (हवास).

अथेन्द्रियाणि पञ्च – (१) शाम्म– (२) –जामिक– (३) बासिर– (४) सामिअ– (५) लामिसाख्यानि । एतेषां मुनिवचोभिर्नामानि घ्राण-रसनःत्वक्-चक्षुः-श्रोत्राणीति । एते च विषयाः -एतेषाम् - (१) मशूमूम् (२) मजूख (३) मुनसर (४) मलमूंस (५) मसमूअ इति पदाभिधेयाः गन्ध-रूप-रस-स्पर्श शद्बाः। तानि चेन्द्रियाणि प्रत्येकं तत्तंद्भूतोत्पन्नानि। तत्र घ्राणं पार्थिवम् । पृथिवीं बिना कस्मिन्नपि भूते गन्धोनुपलम्भाद् , गन्धवत्वस्य गन्धग्राहकत्वात् । रसनेन्द्रियं जलीयं रसव्यज्जकत्वात् । चक्षुरिन्द्रियं तैजसम्, रूपग्राहकत्वात। प्रकाशकत्वस्य द्वयोरपि प्रकटत्वात् । त्वगिन्द्रियं वायवी स्पर्शव्यञ्जकत्वात् । श्रवणेन्द्रियं भूताकाशं शद्बग्राहकत्वात् । अनाहतशद्बश्रवणद्वारा च सिद्धानां चिदाकाशतत्वं प्रकटं जायते । सिद्धैर्विनाऽन्यैर्ज्ञातुमशक्यत्वात् । इदं श्रवणरूपं ध्यानमस्मदादीनां सिद्धानां च साधारणमेव । इदं ध्यानमस्मदेकान्तवादिनो निरन्तरश्रवणमिति वदन्ति । तदेव सिद्धैर्ध्वनिरित्युच्यते ।

इन्द्रियों या करणों की संख्या पाँच हैं इनके फारसी में क्रमशः नाम है :– शाम्म (१), जामिक (२) वासिर, (३) सामिअ (४) तथा लामिस (५) जिनको भारतीय मुनियों ने क्रमशः (१) घ्राण, (२) रसन (३) त्वक् (४) चक्षुस तथा (५) श्रोत्र नामों से वतलाया हैं । जिनके विषय गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शद्ब कहे गये हैं ।

प्रत्येक इन्द्रिय की उत्पति तद्नुरूप (विशेष) भूतों से होती है । अतएव "गन्ध" की उत्पत्ति पृथ्वी से मानी जाती है क्योंकि पृथ्वी से भिन्न या अतिरिक्त किसी भूत में गन्ध

का ग्राहक न रहने से गन्धयुक्त ''घ्राण'' है (और गन्ध का ग्रहण घ्राणेन्द्रिय से ही होता है)। ''रसना'' (या रसनेन्द्रिय) की उत्पत्ति जल से होती है क्योंकि इसका स्वादरूप ग्रहण जिव्हा से ही होता है ।

रूप-ग्राहक होने से ''चक्षु'' इन्द्रिय की उत्पत्ति अग्नि या तेजस् तत्व से मानी गयी है क्योंकि इसी से रूप (वस्तु का आकार तथा रंग) का प्रत्यक्ष किया जाता है । क्योंकि तेज एवं चक्षु दोनों ही प्रकाशक (होते) हैं ।

त्वग् इन्द्रिय वायु से उत्पन्न मानी गयी क्योंकि वायु का गुण स्पर्श है जिसका प्रत्यक्ष त्वगिन्द्रिय से होता है ।

''श्रोतृ'' इन्द्रिय भूताकाशरूप है क्योंकि श्रोतृ (कर्ण) इन्द्रिय के द्वारा ही शद्ब का श्रवण (या प्रत्यक्ष) होता है । शद्ब आकाश का गुण है अतः यह शद्ब श्रवणरूप तथा ध्वन्यात्मक होता है ।

अनहदनाद- जो ध्वनि आहत कार्यो (ढोल के पीटने जैसे कार्यो) से उत्पन्न नहीं हो वह अनहदनाद है । आन्तरिक श्रवण रूप यह अनाहत ध्वनि या नाद कहलाती है । इस अनाहत-शद्ब के सुनने से सिद्धों को चिदाकाशतत्व प्रकट हो जाता है । यह श्रवणरूप ऐसा ध्यान है जिसे हमारे मनीषिजन सन्त तथा भारतीय सिद्धों ने सामान्य रूप में ग्रहण किया है । इस प्रकार के ध्यान को हमारे आदर्श सूफीसन्त निरन्तर श्रवण के रूप में कहते हैं तथा इसी को भारतीय सिद्धों ने भी अनहदनाद बतलाया है ।[1]

आभ्यन्तरेन्द्रियाणि पञ्च - (१) ख्याल (२) मुतसरिफ (३) हाफिज (४) वाहिमहि (५) सिमुथरक इति । सिद्धमते चत्वारि-मनोबुद्धिचित्ताहङ्काराः । एतेषां समुदायं पञ्चममन्तःकरणमितिवदन्ति। तत्र मनसो द्वे शक्ती सङ्कल्पविकल्पात्मिके करणाकरणरूपे । द्वितीयं बुद्धिः । बुद्धिस्तु सम्यग्वस्तुगामिनी असम्यक्वस्तुगामिनी च । चित्तमेकं स्वभावं धत्ते यं वृत्तिमिति वदन्ति। अयं स्वभावस्तस्य चरणस्थानीयः । एतच्छेदेन चित्तं धावनात् परावर्तते। चितं तु मनसो जाड्घिकं कार्यं तच्च कार्यं सर्वदिग्धावनम् ।

---

१. भारतीय सिद्ध जन इस अनहदनाद का उदाहरण ओम् ॐ की ध्वनि मानते हैं । सूफी रहस्यवादी सन्तों का मत है कि मनुष्य तथा परमेश्वर के मध्य एक शाश्वत सम्बन्ध है जो उपास्य तथा उपासक या सेव्य-सेवक के बीच होता है । अद्वैतवाद और एकेश्वरवाद दोनों ही इसे अपनी विचार कोटि में अपने-अपने विचारों से उपस्थित करते हैं । अतः सामान्यतः परमेश्वर या विश्वात्मा ही पूर्ण है तथा मनुष्य या उपासक का एकमात्र उदेश्य अपने इष्ट उपास्य में लय प्राप्त करना है ।

तद सदसद्विवेकक्षमं च न भवति। चतुर्थमन्तरिन्द्रियमहङ्कारः। अहं करोमीत्यादि प्रतीतिसाक्षिकः। अहङ्कारः परमात्मनः कार्यं माया-सान्निध्यात्। स चाहङ्कारस्त्रिविधः सात्विको राजसस्तामसश्चेति। तत्र सात्विको ज्ञानस्वरूपः उत्तमः, स च परमात्मनः 'सर्वं खल्वहमिकाराभिमानरूपः। अयं सकलवस्तुसामान्यरूपः सर्व-व्यापकश्च।

आभ्यन्तर या अन्तरिन्द्रियां पाँच मानी गयी है - (1) ख्याल (2) मुतसरिफ, (3) हाफिज, (4) वाहिमहि तथा (5) सिमुथरक । भारतीय मत में अन्तरिन्द्रिय चार मान्य हैं - मन, बुद्धि, चित्त तथा अहङ्कार । इन चारों के समुदाय को पांचवी अन्तरिन्द्रिय मानते हैं ।[1]

इन अन्तरिन्द्रियों में प्रथम (मन की) दो शक्तियाँ है । (1) संकल्प तथा (2) विकल्प जो क्रमशः करण या करना संकल्पशक्ति और न करना विकल्पशक्ति है; इनमें प्रथम प्रयत्न की ओंर अग्रसर होती है और दूसरी इसके विपरीत बढ़ती है ।

द्वितीय अन्तरिन्द्रिय "बुद्धि" है, जो किसी भी यथार्थ वस्तु के सम्यक् या सत्य तथा असम्यग् या असत्य रूप का निश्चय करने वाली मानी गयी ।

"चित्त" का केवल एक ही कार्य या स्वभाव होता है जो वृत्ति कहलाता है । जैसे पैरों की सहायता से शरीर सर्वत्र गतिशील होता है वैसे ही वृत्ति की सहायता से चित्त सर्वत्र गतिशील होता है । अतएव चित्तया मन का जाङ्घिक (जंघाओं से होने वाला कार्य करने वाले की तरह है)) और यह सभी ओर भागने का कार्य कर पाता है । यह सत्य तथा असत्य का विवेक या निश्चय करने में असमर्थ होता है ।

चौथा अन्तरिन्द्रिय "अहङ्कार" है, जिसका 'मैं करता हूं' इस प्रतीति से साक्ष्य होता है । माया के योग ब्रहम या परमात्मा का कार्य "अहङकार"[2] है । इसके तीन प्रभेद हैं-सात्विक राजसव तथा तामॆस । इनमें ज्ञानका आधायक या ज्ञानस्वरूप सात्विकअहंकार उत्तम माना जाता है । ईश्वरीय अहंकृति या अभिमान जैसे-सभी कुछ मैं हूँ यह सात्विक अहङकार का (रूप या) उदाहरण है । इसका स्वरूप सर्वसाधारण है तथा यह विश्व के समस्त पदार्थों में समाया होने से सर्वव्यापी है ।[3]

---

१. यह विवरण सन्दिग्ध प्रतीत होता है जिसके आधार तुलना में सादृश्य नहीं देख रहे हैं । ब्रह्म का अहंकार से युक्त रहना भी ऐसी ही एक बात है.।

२. यह अहंकार का विवरण पुरुषोत्तमदेव आचार्य प्रणीत वेदान्तरत्न मञ्जूशा' के विवरण से मिलता जुलता है अतः एकदेशीय पक्ष की स्थिति रखता है ।

३. आत्मैवेदमग्र· आसीत् -- । सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत् (सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत् । बृह० १/४/१)

यथाऽमद्वेदे श्रूयते "अलाहोम्मा होविकुशल्लइन्नसहीत्" । अस्यार्थः- ज्ञानी चेतनावान् भवति निश्चयेन सर्वव्यापक इति । अथच-'हुवलअ त्व्वल आखिरू वज्जाहिरू वलवातिन् " अस्यार्थः- तन्मात्रमादि : तन्मात्रमन्तः तन्मात्रं प्रकटं तन्मात्रं गुप्तामिति ।

जैसा हमारे वेद (कुरआन) में कहा गया है-"अलहोम्मा होविकुल्लिशइन्नसहीत्"-जिसका अर्थ है कि ज्ञानी चेतनाशील होता है और वह असन्दिग्ध रूप में निश्चय ही सर्वव्यापक है" । आगे कहा गया है कि -परमेश्वर अकेला होकर भी आदि और अन्त दोनों है तथा वही प्रकट तथा गुप्त भी है ।

राजसोऽहङ्कारो मध्यमः । सच जीवभावमापन्नस्य शरीराद् भूतेभ्यश्चातिरिक्तोऽहं नाहं भूत-सम्बन्ध इत्याकारकः । तथाऽस्मद्वेद्वे नास्ति तत्सदृशं वस्तु, ईश्वरासकामः संसारप्राकटयात् ।

राजस-अहङ्कार मध्यम होता है । जिसका स्वरूप यह है कि जीवरूप को प्राप्त आत्मा को जो प्रतीत होती है कि मैं शरीर तथा भूतों से अतिरिक्त हूँ तथा भूतों से सम्वद्ध नहीं हूँ ।[1] हमारे धर्मग्रन्थ में इस प्रकार का पदार्थ (राजस अहङ्कार) नहीं मिलता । सम्पूर्ण संसाररूप से प्रकट होने के कारण फलतः परमेश्वर ही आप्तकाम[2] (परिपूर्ण इच्छाओं वाला) है ।

तामसाहङ्कारोऽधमः । अयञ्चाविद्यातः । अविद्या तु शुद्ध ब्रह्मण उपासकत्वकल्पना । अधमत्वञ्चास्यातिनीचत्वात् परिच्छिन्नत्वाच्च । अज्ञाना बुद्धिः प्रमादानङ्गीकरोति (सा) स्वीयं स्थूलशरीरं दृष्ट्वा वदति-अहं त्वमिति, एकत्वमान्यताया दूरे पतति ।

तामसेअहङ्कार - यह निकृष्ट या अधम कोटि का माना गया है । इसकी उत्पत्ति अविद्या से होती है । शुद्ध ब्रह्म के प्रति उपासक रह कर ऐसी समानता की कल्पना कि जीव ब्रह्म के समान है-मानना अविद्या है । अपने परिच्छिन्न या संकुचितता केनिकृष्टता की स्थिति

---

१. न मे सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति । अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः. (छान्दो ८/१२/६)

२. अस्यैतदाप्तकाममात्मकाममकामं रूपं शोकान्तरम् (बृह ४/३/२६)

३. अद्वैतवेदान्त की मान्यता के अनुसार जीव और ब्रह्म का भेद केवल व्यावहारिक दशा में ही संभव है, क्योंकि पारमार्थिक दशा में तो दोनों अभिन्न होते हैं । यह सत्य की प्रवलता के कारण होता है । इसके विपरीत सांख्यदर्शन में अहंकार के भेदत्रय दूसरे रूप में वर्णित है ।

बनाने से ''अधम'' माना जाता है । बुद्धि अज्ञान के साथ मिलकर प्रमादों को अङ्गीकार करती है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य अपनी आँखों के द्वारा किसी वस्तु का स्थूलभाव से भौतिक आकलन करतेहुए स्थूल शरीर को देखकर करता है कि यह मैं हूँ और यह तू है । इस प्रकार करने से जीव तथा ब्रह्म की एकत्व की मान्यता दूर पड़ जाती है ।(एकात्मकता नहीं होती या बाधित हो जाती है) ।

अस्मद्वेदे श्रूयतें-वद हे महासिद्ध अयमस्ति अस्मादतिरिक्तं संद्वस्तु नास्ति, अहं मनुष्योऽहं भवत्सदृश इति। वसिष्ठेनाप्युकम् - शुद्धचैतन्यं हि परिच्छिन्नं स्यामितीच्छया तत्क्षण एव परमात्मरूपं बभूव। ततोऽपि परिच्छिन्नं महत्त्वरूपं बभूव । ततोऽतिपरिच्छिन्नतयाऽहङ्काररुपं बभूव तत्सङ्कल्पेन मनो बभूव । तत् प्रकृतिपदेनाप्युच्यते । मनः सङ्कल्पात् पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि घ्राण-रसन-चक्षुस्त्वक्-श्रोतृरूपाणि उत्पद्यन्ते। तत्सङकल्पात् कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणि-पाद-पायूपस्थाख्यानि उत्पद्यन्ते । एतत्सङ्कल्पाद् बाहया आभ्यन्तारा अवयवा उत्पपन्तें । एतत्समुदायं शरीरं वदन्ति ।

हमारे वेद में इस प्रकार सुना जाता है– हे महासिद्ध, बतला इसे कि मैं तेरे ही समान विनश्वर मनुष्य हूं यह सद्वस्तु या तत्व (सत्य) नहीं है ।

वसिष्ठ ने भी कहा हैं कि ''परिच्छिन्न जीव भी अपनी शुद्ध (व्यापक) चेतना के (द्वारा इच्छा के) फलस्वरूप उसी क्षण अपने व्यापकरूप वाले ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है तथा परिच्छिन्न रहने से वह अहङ्कार रूप वाला हो जाता है ।[1] इससे भी परिच्छिन्नत्व रखने पर वह महत्तत्व के रूप में परिणत हो जाता है । यह ही (महत्तत्व) इच्छा या संकल्प से जन्य मन का रूप प्राप्त करता है । इस प्रकार की परिवर्तित धारा को प्रकृति (भी) कहा गया है ।[2] मन के संकल्प से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ-घ्राण, रसन, चक्षुः, त्वक, तथा श्रोतृ । मन की इसी इच्छा से पाँच कर्मेन्द्रियों की भी उत्पत्ति होती है । ये है-वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ । मन के इसी संकल्प से बाह्य एवं आभ्यन्तर अंगो (अवयवो) का जन्म होता है जिनका एकीभूत रूप ''शरीर'' कहलाता है ।

---

१. यहाँ ब्रह्म के व्यापक रूप का आशय ईश्वर या ब्रह्म से न रह कर हिरण्यगर्भ से है । इसका संकेतार्थ रूहेआजम या पैगम्बर मुहम्मद की आत्मा है जो हिरण्यगर्भरूप में मानीं गयी । उपनिषद् भी सोऽवेदहं वाव सृष्टिरस्म्यहं हींदं सर्वमसृक्षीति । ततः सृष्टिरभवत् - (बृह० १/४/५) ।

२. पंचभूत से सभी पदार्थो का निर्माण हुआ जो कि प्रकृति से उत्पन्न हुए थे । अतः प्रकृति असीमशक्ति के रूप में परमेश्वर से उत्पन्न या निर्मित हुई इसलिए परमेश्वर सृष्टिकर्ता तथा सभी वस्तुओं या उत्पन्नपदार्थों का परमपितामह है ।

इत्थं सर्वपदार्थप्रपितामहरूपः परमात्मैव एतान्युत्पाद्य एतैरात्मानं बबन्ध। यथा कोशकीटी-लालानिर्मितैस्तन्तुभिरात्मानम् । इत्थं जगत् सृष्टा स्वयं तत्र प्रतिवेश । यथा बीजः स्वयं वृक्षमुत्पाद्य तत्रानुप्रविशति । पूर्व ही चिद्रूपे सर्वं गुप्तमासीत, साम्प्रतं प्रकटीभूते जगति स्वयं गुप्तोऽभवद् इति ।

इसी प्रकार सभी पदार्थो के प्रपितामहरूप परमेश्वर ने इन्हें उत्पन्न कर इन्ही से अपने को बाँध लिया । जैसे रेशम का[1] कोशकीट या मकड़ी अपने ही लार में से निकले सूत्र को विस्तारित करती है तथा वही उसका संहरण भी (अपने में) कर लेती है । इसी प्रकार हिरण्यगर्भ या परमपितामह विराट ने इस सृष्टि का अंपने में से ही निर्माण किया तथा (इस रूप प्रक्रिया को निरन्तर गतिशील रखने की भावना से) वह सभी सृष्टि के बीच में वृक्षरूप की तरह स्वयं प्रविष्ट होकर स्थित रहा । सृष्टि के पूर्व चित्स्वरूप ब्रह्म में सभी गुप्त या अदृश्य था जो इस प्रकार प्रत्येक वस्तु में वह ईश्वर अदृश्यभाव से अवस्थित है तथा सम्पूर्ण सृष्टि में सर्वत्र विद्यमान भी है ।

विभाग चतुर्थ--

ध्यान निरूपण - (अशाग़ाल)

ध्याननिरूपणंम् -

तत्र यद्यपि सर्वश्वासनिरोधा नानाविधाः सिद्धैरुक्तास्तथापि अजपां सर्वोत्कृष्टां वदन्ति। यत इयं जाग्रद्दशायां स्वप्नदशायाञ्च स्वभावतः सर्वप्राणिनां सर्वदा सम्भवति। तदुक्तमस्मद्वेदे-"नास्ति किञ्चिदीदृशं वस्तु यत् परमेश्वरः जपं सर्वदा न करोतीति, परन्तु भवन्तो न जानन्ति।"

---

१. - उपनिषदों में मकड़ी तथा उसके द्वारा सृष्टि या विश्व निर्मित किये जाने के दृष्टान्त से सृष्टि तथा प्रलय का प्रतिपादन दिखलाया । यर्थोर्णनाभिः सृजते गृहयते च यथा पृथिव्यामौषधयः सम्भवन्नि । यतः सतः केशलोमानि तथा क्षरात् सम्भावन्तीह विश्वम् ।।-(मु०उ०१/१/७) यह वेदान्त के परिणामवाद का भी निदर्शक है । अतः अपने शरीर से ब्रह्म ही सृष्टि का निर्माण करता है तथा फिर भी इससे पृथक रहता है तथा अपरिहार्य है । यहाँ इसी तथ्य को रेशम के कीट के द्वारा दिखलाया है । जिसका अर्थ है सम्पूर्ण लोक या शरीर जिसे कोश कहा गया है । जैसे कि- अन्तरिक्षोदरः कोशोभूमिबुध्नो न जीर्यते । स एव कोशो वसुधानस्तस्मिन् विश्वमिदं श्रितम् ।।' (छान्दो ३/१५/१) भगवद् गीता के भी 'अहं सर्वस्य जगतः प्रलयः प्रभवस्तथा' से यही तथ्य निदर्शित किया है ।

अनेनाजपजप एवोक्तः। तस्योच्चारणे पदद्वयं कृतम् । तत्र श्वासस्योपरिगमने 'स'-इति पदमाविर्भवति । नीचैरागमने अहमिति । अस्यार्थः-सोहमिति। अस्मादेकात्मवादिनोऽपि श्वासक्रियायां 'हु अल्लाह' इति जानन्ति (वद-न्ति च) । स्वासस्योपरिगमने 'हु'-इति बहिरागमने 'अल्लाह-इति प्रकटीभवति ।

यद्यपि ध्यान के सम्बन्ध में सिद्धों ने अनेक प्रकार के श्वास निरोध' (त्राणांयाम) बतलाये हैं । जिनमें प्राण, अपान व्यान उदान तथा समान नामक श्वासों के निरोध होते हैं; और प्रायायामपूर्वक ध्यान की व्यवस्था है, फिर भी ''अजपा'' नामक ध्यानयोग इन सभी में सर्वोत्तम कहा गया है । क्योंकि सभी प्राणियों के द्वारा जाग्रत तथा सुप्तावस्था में स्वभावतः सहजभाव से यह सर्वदा हो सकता है । जेसा कि हमारे वेद में (भी) कहा गया है -''विश्व में कोई प्राणी या पदार्थ ऐसा नहीं है जो सदैव परमेश्वर का जप न करता हो परन्तु इसे आप नहीं जानते हैं (या इसका भान नहीं रहता) । यही अजपा ध्यान की दशा है जिसको इसके द्वारा कहा गया है । अजपा जप के उच्चारण में दो शब्दों (पदों) का उच्चारण किया जाता है । इनमें श्वास के ऊपर लाने या चढ़ाने से ''सः'' पद का तथा श्वास को नीचे आने (लाने) से ''अहम्'' पद का उच्चारण होता है । दोनों का समुचित अर्थ या स्वरूप ''सोऽहम्'' बन जाता है ।[२]

हमारे एकात्मवादी सूफी सन्त भी श्वास की इसी प्रकार की क्रिया के द्वारा ''हू-अल्लाह'' (अर्थात ईश्वर या अल्लाह है) का उच्चारण मानते हैं । जव श्वास ऊपर खीची जाती हैं तव ''हू'' (वह) उच्चारित होता है तथा जब श्वास वापस नीचे उतारी या छोड़ी जाती है तो ''अल्लाह'' (परमेश्वर) शद्व उच्चारित होता है ।[३]

विभाग पञ्चम --

परमेश्वर के गुणों की व्याख्या - (सिफाति-अल्लाहताला)

अथ परमेश्वरगुणाव्याख्यानम् । एकात्मवादिनां मते परमेश्वरस्य गुणद्वयमस्ति । तच्च जलाल-जमालाख्यम् इति सर्वा सृष्टिरस्माद्

---

१. श्वास को खींचने तथा छोड़ने की प्रक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न शद्व हंस को साधक विद्वानों ने 'अहं सः' में विभक्त किया हुआ माना है । जिसका अर्थ है 'मैं ही ब्रह्म हूँ' । अतः यह मन्त्र है तथा आत्मा तथा परमात्मा के एकीकृत रचरूप का निदर्शक है ।

२. अर्थात् श्वास के भीतर खींचते समय 'सः' (वह ईश्वर) उच्चारित होता है तथा श्वास के छोड़ते या वाहर उतारते समय 'अहम् ' (मैं या जीवात्मा) उच्चारित होता है । जैसा कि 'प्राणान् प्रपीड्येत स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसति ।(श्वेता० २/९) ।

३. समुद्रसंगम के फारसी पाठ में जव श्वास खींची जाती है तव 'हू' (अहंकार) तथा श्वास छोड़ी जाती है तो 'अल्लाह' का उच्चारण अभीष्ट है यही सूफी भी मानते हैं । किन्तु यहाँ समुद्रसंयम के संस्कृत पाठ में यही विवरण विपरीत रूप में आ गया है (जो चिन्त्य है)।

गुणद्वयाद् बहिर्भूता। सिद्धैस्तु त्रयो गुणा उक्ताः अतस्त्रिगुणं वदन्ति सत्वं रजस्तम इति। तत्र राजस उत्पत्तिः, सत्वात् पालनं तमसः प्रलय इति। अस्मदीयैस्तु प्रतिपालकं सत्वगुणं रजः-पदवाच्ये जमालेऽन्तर्भाव्य द्वैविध्यं गुणमुक्तम्। एतो त्रयोऽपि गुणा : परस्परं संवलितवृत्तयः। एतेषामधिष्ठातार त्रिमूर्तिरूपा उच्यन्ते। .ते च ब्रह्मा-विष्णु-महेशाः इति। तान् अस्मदीया जबरईल 'मीकाईल-इसराफील' इति वदन्ति। उत्पत्यधिष्ठाता जिबरईल, प्रतिपालनाधिष्ठाता मीकाईल संहारस्या धिष्ठाता च इसराफिल इति।

एकात्मवादी सूफी दार्शनिकों के मत (इस्लाम) में प्रथमतः ईश्वर के दो गुण (सिफ़्त) माने गये हैं। (1) जलाल तथा (2) जमाल।[1] ईश्वर के इन्हीं दो गुणों से सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति या उसका निर्माण होकर अस्तित्व में आया। भारतीय दर्शन के सिद्धों (सांख्य तथा वेदान्त दर्शन के प्रर्वतक मनीषिजन) ने तीन गुणों का विवरण दिया वे सत्व, रजस् तथा तमस नामक तीन गुण बतलाये है। इन त्रिगुणों में रजोगुण से (सृष्टि की) उत्पत्ति, सत्वगुण से पालन तथा तमोगुण से सृष्टि का प्रलय या संहार माना गया है। हमारे मत के आचार्यों ने प्रतिपालक सत्वगुण को रजस्पद से समझे जाने वाले जमाल नामक गुण में अन्तर्भूत कर दो गुण के प्रभेद ही स्वीकार किये हैं। भारतीय दर्शन में मान्य सत्वादि ये तीनो गुण परस्पर मिश्रित भाव से एक दूसरे के साथ रहते है। इन तीनों गुण के अधिष्ठाता देवता भी त्रिमूर्ति रूप ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश कहे गये। हमारे आचार्य इन्हे क्रमशः जिवराईल, मिकाइल तथा इसराफील नाम से बतलाते है। इनमें उत्पत्ति का अधिष्ठाता जिवराईल, प्रतिपालन तथा संरक्षण का मिकाइल तथा संहार या प्रलय का अधिष्ठाता इसराफील माना गया है।

एतेषां भूतत्रयरूपा जलं-तेजो-वायवः सम्बन्धिनः। जलं जिबराईलस्य सम्बन्धि, तेजो मिकाईलस्य सम्बन्धि वायुरिसराफीलस्य च सम्बन्धि। एते त्रयोऽपि सर्वशरीरे प्रकटाः। तथा हि-जलरूपो ब्रह्मा जिह्वाग्रतः परमेश्वरवाक्प्रकाशकः। उच्चारणमेतस्मात् प्रकटीभूतम्। तेजोरूपो विष्णुश्चक्षुषि गतः प्रकाशो ज्योतिश्च तत्रास्ति।

---

१. जलाल-प्रभुत्व या प्रशासन। जलाल-सौन्दर्य। जलाल से महिमा तथा जमाल से अतिसुन्दर का बोध भी है। जिससे पूर्णता का भी अभिप्राय निकलता है तथा प्रभावपूर्ण लक्षण भी प्रकट होता है। दाराशिकोह का त्रिगुणों से जोड़ने का आभास अस्पष्ट है तथा समझ से परे लगता है, क्योंकि शुद्धचैतन्य त्रिगुणातीत रूप में माना जाता है।

दर्शनमेतस्मात् प्रकटीभूतम् ।वायुरूपो महेशो नासायां शङ्खस्य फूल्काररूपद्वयमस्मात् प्रकटं श्वासद्वयरूपम् । तस्य समाप्तौ विनश्य (नाशय) ति प्राणिजातम् ।

इन तीनों का सम्बन्ध भी क्रमशः तीन भूतों से रखा गया है । ये है-जल, तेज तथा वायु । जल से जिवराइल का, तेज से मिकाइल का तथा वायु से इसराफील का सम्बन्ध नियत किया गया । ये तीनों सभी के शरीरों में प्रकट या सम्मिलित होकर स्थित रहते है । अतएव जल रूप ब्रह्मा (जिवराईल) जिव्हा पर स्थित रहता है ओर वह परमेश्वर के वाक्य का प्रकाशक (तत्व) है तथा इसी कारण मुख से उच्चरित होकर वाक्य (शुद्ध) (प्रकट (व्यक्त) होता है । तेजारूप विष्णु (मिकाइल) नेत्रों में अवस्थित होता है अतः उसमें ज्योति एवं प्रकाश है, जिससे देखने का कार्य करते है । वायुरूप महेश (इसराफील) शरीर के नासिका के दोनो नथुनों में रहते हैं । जिससे शंख से मिकले दो फूत्काररूप नाद प्रकट होते है जो श्वास (श्वास का अन्दर खींचना और बाहर आने का) कार्य करते हैं तथा श्वास की संमाप्ति पर जीवजगत् का विनाश (संहार) हो जाता है ।

त्रयोगुणाः परमेश्वरस्य गुणाः । ते चोत्पत्ति-स्थिति (प्र) लयहेतवः। एतेषां गुणानां प्रकाशका अपि ब्रह्मा-विष्णु-महेशाः तेषां च गुणाः सर्ववस्तुषु प्रकटाः । प्रथममुत्पत्तिः, ततः कियत्कालं स्थितिः पश्चात् विनाशः इति। त्रिमूर्तेस्तस्यैतस्य सामर्थ्यापरपर्यायं शक्तित्रयम् - सरस्वतीः लक्ष्मीः पार्वतीति वदन्ति । सरस्वती रजोगुणयुक्ता ब्रह्मासम्बन्धी, पार्वती तमोगुणयुक्त महेश-सम्बद्धा, लक्ष्मीः सत्वगुणयुक्ता विष्णुसम्बद्धेति ।

उत्पत्ति स्थिति तथा लय के कारण ये तीनों परमेश्वर के गुण माने जाते हैं तथा इन गुणों के प्रकाशक भी ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश हैं । ये गुण सृष्टि में अवस्थित सभी वस्तुओं में व्यक्त या स्पष्ट दिखलाई देते हैं । अतएव सभी पदार्थों की प्रथम उत्पत्ति, फिर कुछ समय तक स्थिति और बाद में विनाश हो जाता है । इन देवताओं की सामर्थ्य भूत तीन शक्तियां है- जिन्हें क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती कहा जाता है । रजोगुण युक्त ब्रह्मा से सरस्वती, तमोयुणयुक्त महेश से पार्वती तथा सत्वगुणयुक्त श्रीविष्णु से लक्ष्मी सम्बन्द्ध मानी गयी है ।

विभाग-षष्ठ-

रूह या आत्म-निरूपण

अथ रूहापरपर्यायस्यात्मनो निरूपणम् । रूहस्य द्विविधत्वम् -रूहजूजई रूहकुली च । मुनयः एतौ द्वौ जीवात्मानं परमात्मानं च

वदन्ति । शुद्धचैतन्यं स्थूलोपाधिना सूक्ष्मोपाधिना च परिच्छिन्नं, ततः सूक्ष्मोपाधिना परिच्छिन्नं सत् देहः शरीरमित्युच्यते। अथ च शुद्धचैतन्यं प्रथमपरिच्छेदकात् परिच्छिन्नं सत् 'रूहआजम' पदाभिधेयमेकत्वमान्यतां धारयति । सर्वे रूहास्तस्मिनन्तर्भूताः, तमेवपरमात्मानं रूहकुलीति च वदन्ति, चित्रजलतरङ्गः शरीरात्मस्थानीयः। सर्वे तरङ्गाः समष्टिरूपद्वारां परमात्मपंदेनोच्यन्ते। शुद्धस्वच्छजलमत्र भवति शुद्धंचैतन्यस्थानीयमिति। तत्रोत्पन्ना लहर्यश्च जीवस्थानीया ।

अब आत्मा का-जिसका पर्याय रूह (अरबी भाषा में) होता है । इसके विषय में बतलाते हैं । सूफीमत में इस आत्मा (रूह) के दो प्रकार (प्रंभेद) माने हैं जिनके नाम हैं- (१) रूहे जुजवी (अंश आत्मा) तथा (२) रूहे कुली (अंशी आत्मा) । भारतीय दार्शनिक आत्मा के जीवात्मा तथा परमात्मा नामक दो भेद मानते[1] हैं । शुद्ध चैतन्य स्थूल एवं सूक्ष्म उपाधि से परिच्छिन्न रहता है अतः जब यह सूक्ष्मउपाधि से परिच्छिन्न होगा तो यह रूह (आत्मा) "जीव" मानी जाएगी । और यह स्थूल उपाधि से परिच्छिन्न रहे तो "देह" शरीर कहलाएगी । इसके अतिरिक्त शुद्धचैतन्य प्रथम परिच्छेद सूक्ष्मोपाधि से परिच्छिन्न (युक्त) होता है तो वह "रूहेआजम" कहलाता है और एकल की मान्यता को धारण करता है । इस समय इसमें सभी रूहें (जीवगण) अन्तर्भूत रहते हैं अतः ऐसी दशा में आत्मा के इस भेद को परमात्मा एवं रूहकुल्ली कहा जाता है । पानी में उठी हुई विचित्र व्यष्टिभूत जलतरंग देहात्मा (स्थूला शरीराभिमानी जीवात्मा) के सहश तथा सभी तरंग अपने समष्टि रूप के द्वारा परमात्मा पद से समझी जाती है । यहाँ इस दृष्टान्त में शुद्धजल को शुद्ध चैतन्य के स्थान पर रखते हुए समझाया गया है । (अर्थात् जल को ब्रह्म या परमात्मा का स्थानीय तथा उसमें उठने वाली ओर उसी में समा जाने वाली लहरें जीव स्थानीय हैं ।[2])

विभाग सप्तम

प्राणादितत्व का निरूपण-(बाद)

अथ प्राणादिनिरूपणम् -स च सर्वशरीरान्तः सञ्चरन् वायुर्यतः पञ्चसु स्थानेषु तिष्ठति ततो नाम-पञ्चकं धत्ते । तानि च

---

१. यहाँ का विवरण विशिष्टाद्वैत वेदान्त से मिलता जुलता है। इस दर्शन में जीव परमेश्वर का अंश तथा अंशी जीव और जड या अचित् जगत् ये परमेश्वर का शरीर है ।

२. अपरिच्छिन्न शुद्धचैतन्य-स्वच्छजलप्रवाह, सूक्ष्मोपाधि से उपहितशुद्धचैतन्य-तरंगसमूह या समष्टि और स्थूलउपाधि से उपहित चैतन्य-देहाभिमानी जीव। यही ग्रन्थकार की कल्पना लगती है ।

प्राणापानसमानोदानव्यानरूपाणि। नासातः पादाङ्गुष्ठपर्यन्तं सञ्चरन् 'प्राणः' श्वास एतद्विकारः। गुदान्मेढ्रपर्यन्तं सन्चरन् 'अपानः', एतयोर्द्वयोर्नाभिं परितो ग्रन्थिर्जीवननिमित्तम्. नाभिहृदययोर्मध्ये सञ्चरन् 'उदानः' सर्वशरीरेऽन्तर्बहिश्च त्वचमभिव्याप्य वर्तमानो 'व्यानः' इति।

अव यहाँ प्राणादि तत्व का विवरण दे रहे है। जव प्राण वायु सम्पूर्ण शरीर के अन्दर संचरण करते हुए पाँच स्थानों पर रूकता या स्थित होता है। उसे पांच स्थानों पर स्थित रहने के कारण पाँच नाम से युक्त मानते हैं तथा इसे प्राणपंचक भी कहते हैं। इनके ये पाँच नाम हैं - (1) प्राण (2) अपान, (3) समान, (4) उदान तथा (5) व्यान। शरीर के नासाप्रदेश से चलकर पैर के अंगुठे तक संचार करने वाला वायु "प्राण" कहलाता' है। जिसका-श्वास विकार (परिणंत) रूप हैं। गुदा भाग से लेकर उपस्थ अंगतक रहने वाला संचरणशील वायु "अपान" कहलाता है। इन दोनो प्राणों की नाभिप्रदेश के चारों ओर लगी हुई ग्रन्थि ही जीवन का कारण है। नाभि एवं हृदय के मध्यवर्ती संचरणशील वायु "समान" कहलता है। कण्ठदेश से ब्रह्मरन्ध्र तक प्रसार करने वाला वायु "उदान" तथा सम्पूर्ण शरीर के अन्दर और बाहर त्वचा को व्याप्त कर स्थित रहने वाला वायु "व्यान" कहलाता है। इस प्रकार हमने प्राणादिपञ्चक का निरूपण किया।

विभाग अष्टम

जगच्चतुष्टय-निरूपण (अवालिमि-अरवाअ)

अथ जगच्चतुष्टय निरूपणम् - एषु जगत्सु सर्वप्राणिनोऽवश्यं सञ्चरन्ति। केषाञ्चिदेकात्मवादिनां मते तानि जगन्ति चत्वारि-नासूत, मलकुत, जवरूत, लाहुत इति। केचित् जगन्ति पञ्चेति वदन्ति। आलममिसाल इतिपदाभिधेयं, पञ्चममिति। सिद्धा एतानि जगन्ति अवस्था-चतस्त्र इति वदन्ति जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीयांख्याः। तत्र

१. यहाँ यह विवरण अपर्याप्त तथा संक्षिप्त है। प्राण के दो अर्थ या स्थिति है, जिनमें पांचो प्रकार के शरीरान्तःसंञ्चारी प्राण हैं तथा-इन पांचों में प्रथम वायु भी प्राण माना जाता है। दाराशिकोह ने प्राण का एक ही अर्थ बतला कर शेष सभी छोड़ दिया है। न्यायादि-दर्शन में दूसका विस्तार से विवरण है तथा इसे एक मान कर हृदय आदि स्थान, दशा तथा मुखादि से निर्गमन करने आदि के क्रियाभेद के कारण इसकी अनेक (पांच) संज्ञाए मानी गयी। मैत्रायणि उंपनिषद् तथा न्यायदर्शन आदि के आचार्यो ने इस पर सूक्ष्मविचारों को उपस्थित किये हैं।

जाग्रत नासूतानुसारि, तच्च जगत् प्रकटं जागरणरूपञ्च । अथ स्वप्नो मलकूतानुसारि, स च जगदात्मनो जगत्स्वापश्च । अथ सुषुप्तिः जवरूतानुसारिणी । तस्यां जगद्द्वयचित्राणि त्वन्तादन्ते च न सन्ति । चक्षुषोरुन्मीलननिमीलने चोपविष्ठे सति बहवः कुलद्वय-विरक्ता स्तज्जगदनभिज्ञाः सर्वोत्कृष्टमतेन गुरुणा चुनेद-नामा शुद्धान्तःकरणेन प्रतिबोधिताः सन्तः आज्ञप्ता-"एकात्मता सां यन्मुहूर्त्तमात्रमुपविष्टा विना यत्नम् " इति । अन्यो महापुरुषो वदति-यत्नं विनेति किं प्राप्तेर्विना गवेषणम् , दर्शनं विनाऽवलोकनम् । द्रष्टा दृष्टिविषये निमित्तम् अतोमुहूर्तमात्रमुपवेशनमित्थम् - यज्जाग्रत्स्वप्नरूप-जगत्द्वयचित्राणि यन्मुहूर्तं मनसि नायान्ति । तदुक्तं ब्रह्मज्ञाने महादेव-पार्वति-संवादे-

दृष्टिः स्थिरा यस्य विनावलोकनं
वायुः स्थिरो यस्य विनां निरोधनम् ।
मनः स्थिरं यस्य विनाऽवलम्बनं
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः ।।

अव जगत् के चारों प्रभेदों का निरूपण करते हैं । इन जगतों में सभी प्राणियों का संचार अवश्य रहता है । एकात्मवादी सन्तों के अनुसार ये जगत चार माने गयें हैं ।[1] (1) नासूत, (2) मलकूत, (3) जवरूत तथा (4) लाहुत । इसके अतिरिक्त इसी वर्ग के अन्य चिन्तकों के मत में पांचवाँ जगत् और भी मानते है जिसका नाम है-"आलममिसाल"[2] । अन्य विद्वान् "आलम-मिसाल" को मलकूत में अन्तर्भावित मानकर चार जगत् स्वीकार करते है । भारतीय (विदान्त के) मनीषीजन इन चारों जगत् को चार अवस्थाएं कहते है यथा - (1) जाग्रत,[3] (2) स्वप्न, (3) सुषुप्ति तथा, (4) तुरीय । इनमें जाग्रत अवस्था नासूत के अनुरूप है और वह

---

१. ये सभी फारसी शब्द हैं । नासूत-मानवीय या दृश्य जगत् । मलकूत-अदृश्य जगत् । जवरूत-ऐसा उदात्त जगत् जो शक्ति तथा सामर्थ्य युक्त हो । लाहूत-सर्वोत्तम जगत् या दिव्यलोक ।

२. आलमेमिसाल- यह पांचवाँ या तुर्यातीत जगत् होता है, जो प्रकाशरूप शुद्ध चैतन्य होता है ।

३. जाग्रत आदि का विवरण चार पादों के रूप में रखकर उपनिषद् में भी दिखलाये हैं । द्रष्ट-माण्डूक- (२-७) ।

प्रकट जगत् (में) जागरणरूप या जाग्रत अवस्था है । स्वप्न अवस्था मलकूत के अनुरूप आकाश या स्वप्नमय जगत को समझना चाहिए, क्योंकि यह जगदात्मा तथा जगतस्वाप (स्वप्नमय) होती है । तीसरी अवस्था सुषुप्ति है जो जबरूत के अनुगतरूपवाली है । इस अवस्था में हम गहरी निद्रा में लीन रहते हैं अतः पिछले दोनो जगत् या अवस्थाओं के कोई रूपों का प्रभाव नहीं रहने से 'तू और मैं' के भाव (भान या दूरी) नहीं रहते । आँखो को खोल कर या उन्हें बन्द कर बैठने पर बहुत से ध्यानी दोनों (जाग्रत तथा सुप्त) अवस्थाओं के तटों से विलग (विरक्त) रहते हुए दोनों जगतों से अनभिज्ञ रहते है । (अर्थात इस तीसरी अवस्था में पिछली दो का उन्हें ज्ञान या स्पर्श नहीं रहता है)

ऐसे ध्यानियों को प्रसिद्ध तथा सम्मान्य परमोत्तम सूफी जनेद[1] नामक गुरू ने अपने शुद्ध अन्तःकरण से प्रतिबोध देकर आज्ञा दी कि एकात्मवादी एक मुहुर्त्त (या एक क्षण) भी विना किसी यत्न के बैठे । इसी विष्य पर दूसरे सन्त मनीषी का कथन है कि "यत्न के विना" का क्या अभिप्राय है, प्राप्तिरहित गवेषणा अथवा साक्षात्कार से रहित अवलोकन दृष्टि के विषय में दृष्टा निमित्त होता है । अतः मुहुर्त भर इस प्रकार बैठना चाहिए जिससे उस क्षण में जाग्रत् तथा स्वप्न लोक के चित्र अन्तःकरण या मन में प्रतिविम्वित न[2] हो पाए । ब्रह्म ज्ञान विषयक यही बात महादेव-पार्वती संवाद में इस प्रकार कही गयी है -

"जिसकी दृष्टि देखे बिना स्थिर हो तथा विना निरोध या प्राणायाम के जिसका प्राणवायु स्थिर रहता हो तथा बिना किसी आलम्वन के मन स्थिर हो जाता हो तो वही योंगी है वही गुरू है तथा वही ज्ञानप्राप्तिहेतु सेव्य माना जाता है (अतः उपसर्पणीय कहलाने का अधिकारी होता है।)

तदेवोक्तमस्माकं सिद्धे शुद्धान्तःकरणै :- 'वाञ्छसि चेत् प्राप्तुं क्षणमात्रं मान्वेषय। वाञ्छसि चेत् ज्ञातुं क्षणमात्रं मा जानीहि। यतो रहसि चेदन्वेषयसि प्रकटाद् दूरीभवसि। प्रकटे चेत् अन्वेषयसि रहसो दूरी भवति ।" इति ।

अतो रहः-प्रकटाभ्यां युक्तितो बहिर्भूय्र सपादप्रसारं सुखं स्वपिहि एतमाश्रित्येति ।

---

१. जुनेद- अब्दलकासिम-अल-जुनेद (ई० स० ९०९) एक प्रसिद्ध सूफी सन्त थे। जिनने प्राचीन इस्लाम के साथ सूफी मान्यता को सम्मिलित किया था तथा जिसका उल्लेख इन्हीं के शिष्य अश-शिब्वती ने किया जो खुरासान के निवासी थे । दूसरे विद्वान हैं-शेख-उले-इस्लाम महम्मद-अल अंसारी । यह बात फारसी पाठ से ज्ञात होती है । मौलाना रूमी भी एक सूफी सन्त थे जिनका मन्तव्य भी इसी ग्रन्थ में हैं ।

२. यह स्थिति समाधि की अवस्था में होती है जो सुषुप्ति की दिखलाई है। इस विवरण का आधार शास्त्रों से मेल नहीं खाता ।

इसी तथ्य (तत्व) को हमारे मान्य शुद्धचित्तवाले सन्तों ने इस प्रकार कहा-"यदि तुम अपना अन्तःकरण शुद्धभाव में रखकर स्वयं के प्रयास से यदि परमेश्वर को पाना चाहते हो तो एक क्षण (के लिए ही) अन्वेषण मत करो तथा जानना चाहते हो तो एक क्षण मत जानों क्योंकि हृदय के अन्दर एकान्त में खोजने पर तुम्हें प्रकट (व्यक्त) जगत् से दूर हटना पड़ेगा और प्रकट जगत् में खोजते हो तो एकान्त या हृदय से दूर हट जाओगे । अतः एकान्तभूत रहस्य तथा व्यक्त प्रकट इन दोनों से अपने को जब युक्तिपूर्वक दूर हटाकर केवल उसी पर आस्था या आश्रय लेकर रहने से अपने पैरों को लम्बे फैलाकर सुख से[1] (बिना किसी चिन्ता के) तब सो जाइये ।"

अथ तुरीया लाहूतानुसरिणी। सा शुद्धचैतन्यस्वरूपा व्यापिकाऽच्छादिका जगत्त्रयस्य। यस्यामधिकारी जाग्रतः स्वप्ने स्वक्षात् सुषुप्तेस्तुरीयायामित्येवं क्रमेण सञ्चरति । तदेत्थं तस्य वर्धनं भवति क्षरश्चाक्षरो भवति । अत्रभवन्तंत्वानां तत्वं सिद्धा निर्गुणं वदन्ति। स एव यदि तुरीयातः सुषुप्तौ सुषुप्तेः स्वप्ने स्वप्नाज्जाग्रति विसच्चरति तदा अक्षरः क्षरो भवति ।

चतुर्थ (तुरीय) अवस्था लाहूत का अनुसरण करती है । (जिसे चतुर्थलोक या दिव्यलोक भी कहते हैं) । यह लोक या अवस्था शुद्धचैतन्य स्वरूप एवं व्यापक है तथा उक्त तीनों लोकों की आच्छादक तथा सभी में समाविष्ट या फैली हुई होती है । यदि कोई सुयोग्य साधक अधिकारी जाग्रत् से स्वप्न में तथा स्वप्न से सुषुप्ति में एवं सुषुप्ति से तुरीय अवस्था में क्रमशः आगे बढ़ते हुए संचरण करे तो ऐसे क्रम से उत्तरोत्तर उसकी उर्ध्वगति या प्रगति होगी और वह "अक्षर" हो जाता है जिसे पूज्यजन "निर्गुण" कहते हैं । यदि यही क्रम उलटी दिशा या विपरीत क्रम में संचरण कर सुषुप्ति से स्वप्न तथा स्वप्न से जाग्रत में हटे तो अक्षर से "क्षर" भाव में (विनाशी) हो जाता है ।[2]

विभाग नवम-

नाद एवं ध्वनि (शुद्ध)

अथ शब्दनादयोर्व्याख्या-परमात्मनो निःश्वसितं निमित्तं प्रणवपर्याय 'कुन्'-शब्दसृष्टत्वस्य प्रकटं जातम् । तस्य शब्दनादस्य सिद्धैः

---

१. इसे ही -'तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः' द्वारा (ईशा उप०) बतलाया या संकेतित किया गया है यह स्पष्ट है ।

२. तीन अवस्थाएँ प्राकृत मानी गयी है तथा सुरीय आत्मा का रूप । कहा भी है-
"क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः ।
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः । (श्वेता० १/१०)

सरस्वतीति नाम स्थापितम् । सर्वे शद्वाः ध्वन्यात्मका वर्णात्मकाश्च तस्मादुत्पन्नाः । सर्वं जगत् तस्यानुरञ्जकस्य ध्वनिमयम् । केन श्रुत ईदृशो लम्बमानो ध्वनिः

परमेश्वर के श्वास-निश्वास से उत्पन्न प्रणव ऊँकार का इस्लामी धर्म में (अरबी भाषा में) "कुन्" पर्याय है । यह संसार की सृष्टि के समय सर्वप्रथम परमेश्वर के मुख से प्रकट हुआ है । इस शद्वरूप नाद का नाम भारतीय सिद्वों ने "सरस्वती" नाम से स्थापित किया । इसी नामरूपी सरस्वती से ध्वन्यात्मक एवं वर्णात्मक सभी शद्व उत्पन्न हुए । इस अनुरंजक ध्वनि का स्वरूप ही सम्पूर्ण जगत है (अर्थात समग्र जगत के अन्तराल में उसकी शद्वमयी ध्वनि भर गयी है) इस विश्व व्यापी (विशाल) ध्वनि को किसने सुना । क्योंकि यह नाद सृष्टि पर परमेश्वर का अनुग्रहभूत कार्य है जिसका संसार कृतज्ञ है भी ।

अयं नादशद्वः सिद्वानां मते त्रिविधः । प्रथमतोऽनाहदः । अयमर्थः- ईदृश शद्वः सार्वत्रिकः । एकांत्मवादिन एतच्छद्वमपरिच्छिन्नं सर्वजपानां चक्रवर्तिनं वदन्ति । अयं नादोऽनादिः । प्रत्यक्षत्त्वं चिदाकाशस्य । एतस्मादेतच्छद्वं न प्राप्नुवन्ति कुलद्वयगतमहान्तो विना ।

द्वितीय आहतः । आहतशद्वस्तु परस्पराभिधातादुत्पद्यनते बिना वर्णोच्चारणम् ।

सिद्वों के सत में शद्वरूप यह नाद तीन प्रकार का माना गया जिनमें प्रथम "अनाहत नाद" है । इनमें प्रथम अनाहत का आशय है कि यह किसी प्रयास से न निकलने के कारण ऐसा शद्व सर्वदा रहने वाला होता है । सूफी सन्त (एकात्मवादीजन) इसे अमित, असीम तथा अपरिच्छिन्न रूप वाला मानते हुए सभी (मन्त्रों) के जपों का चक्रवर्ती मानते हैं । (अतः सवपिक्षयया यह मुख्य होता है) । यह अनादि-नाद चिदाकाश (परमेश्वर) को प्रत्यक्षभूत वस्तु के रूप में मान्य है । इसी कारण भारतीय तथा इस्लामिक दोनों कुलों के सिद्वगण तथा सन्तों को छोड़कर इस नाद को सुनने का सामर्थ्य सामान्य मनुष्यों में नहीं होता है ।

द्वितीय प्रभेद "आहतनाद" है जो परस्पर अभिघात से वर्णोच्चारण के बिना उत्पन्न होने वाला होता है ।[२]

---

१. अनाहतनाद ओंकार का रूप है जो उच्चारण से परे श्रव्य है तथा जिसका योगिजन श्रवण करते हैं । जैसा कहा है कि 'परे शद्ववादिनः श्रवणांगुष्ठ-योगेनान्तर्हृदयाकाश-शद्वमाकर्णयन्ति ।। (मैत्रा-६+२३) तथा-'शुद्वो ब्रह्ममय शद्वोऽनाहतो यत्र दृश्यते ।।, यही अव्यक्त ओंकार है जो स्फोटनाद भी बतलाया गया है ।

२. आहतनाद ही वस्तुतः ध्वन्यात्मक तथा वर्णात्मक रूप लेता है तथा स्वरयन्त्र पर वायु के आघात द्वारा ही ऐसे वर्णो की उत्पत्ति होती है ।

तृतीयश्शद्वो वर्णात्मकः । पदोच्चारणप्रयत्नादुत्पद्यते ।

उक्तञ्च-

आहतोऽनाहतश्चेति द्विविधः शद्व उच्यते ।

तत्रानाहतनादं तु मुनयः समुपासते ।

गुरूपदिष्टमार्गेण युक्तित्वं न तु रञ्जकभिति ।

अयं वर्णात्मकः शुद्धः सरस्वतीसम्बन्धी । एतस्माच्छंद्वान्नाम्नां महीयानस्माकं मध्येऽस्ति स इस्मआजम उच्यते । सिद्धास्तु तं वेदमुखम् इति वदन्ति । 'ओम् ' अस्य वेदमुखस्यार्थः । सोऽस्ति गुणात्रय-स्वामी । गुणत्रयं तु उत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तम् । तदेवाकारोकारमकारा वदन्ति । ते च त्रयः प्रकटाः । अथ चैतन्नाम्नो लिपिद्वयेऽप्याकृतिविशेष एक एव । चतुर्णामपि भूतानां जल-तेजोवाय्वाकाशानां शुद्वचैतन्यस्य चात्र चिह्नानि प्रकटितानि

तृतीय प्रभेद "शद्व" है, जो "वर्णात्मकशद्व" कहलाता है तथा यह पदों के उच्चारण के प्रयत्न से उत्पन्न होता है । जैसा कि कहा भी हैं -

शद्व के दो प्रकार है जिनमें प्रथम आहत तथा दूसरा अनाहत कहलाता है । इनमें अनाहत नाद का श्रवण केवल मुनिजन या सिद्व ही करते (   ) हैं । इस अनाहत नाद की अपासना गुरुपरम्परा से वतलाये मार्ग (तथा विधान) से मुनिजन करते है । यह अनाहतनाद मुक्ति का मार्ग प्रदान करने वाला होता है तथा यह सांसारिकसुखात्मक या रञ्जक (मार्ग नहीं) हैं ।[1] शरीर से उत्पन्न या उच्चारित होने वाली इस ध्वनि या शद्व का सम्वन्ध सरस्वती से[2] है । इसी सरस्वती से उदभूत वर्णात्मक शद्व को सूफी सन्तों के मत में "इस्मेंआजम" कहते है जो हमारे वीच नामों या शद्वों में महत्वशाली कहलाता है । भारतीय मनीपी इसे वेदमुख कहते हैं जिसको ओम् या ॐ पद से कहा गया (या जिसका अर्थ ओम्) है । यह सत्व, रज तथा तम गुणों का स्वामी है तथा इसमें ये तीनों गुण अवस्थित हैं । ये तीनों गुण यहां उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय के कारणरूप माने जाते हैं जो अकार, उकार तथा मकार के रूप

---

१. संगीत का नाद रंजक या रक्तिमय होता है तथा यह भी आहतनाद होता है । संगीतात्मक नाद का धर्म रञ्जन होता है, इसी रक्तिं के निवेश से गानयोग बनता है। अनाहतनाद इससे भिन्न होता है अतः वह रंजक नहीं होता

२. ध्वनि का रूप शरीरगत कण्ठ तथा वीणा पर तन्तु से उत्पन्न होकर रहने वाला हैं । वींणा ही सरस्वती का उपकरण है जिससे रंजक नाद उत्पन्न होता है, जव कि वर्णात्मक शद्व वह नहीं होता हैं ।

में[1] कहे गये है । तथा ये तीनों उसमें प्रकट या दृष्ट हैं और इस ओम् का आकार भारतीय नागरी तथा इस्लामिक इन दोनों लिपियों में एक जैसा दिखलाई देता है । तथा जल, तेज, वायु तथा आकाश इन चारों भूतों के तथा शुद्धचैतन्य रूप ब्रह्म के चिह्न इस (ओम् या कुन् शद्ध) में तथा साथ ही परमेश्वर में भी प्रकट होते हैं ।

विभाग दशम

प्रकाश या तेजस् (ज्योति) (नूर)

अय नूरपर्यायप्रकाशव्याख्या-स च त्रिविधः । यदि जलाल-गुण-पर्यायतमोगुणात् प्रकटो भवति तदा सूर्यरुपं वा सुवर्णरूपं वाऽग्निरूपं वा भवति । यदि जमालगुणपर्याय-सत्वगुणात् प्रकटो भवति तदा चन्द्ररूपं वा रजतरूपं वा जलरूपं वा भवति। अथ च गुणा संस्पष्ट स्वरूपप्रकाशं तु बिना परमेश्वरीयसिद्वैरेषाऽस्मद् वेदे इत्थम् आज्ञप्तं स्वप्रकाशः स्वमार्ग ज्ञापयति तं प्रति यमपेक्षते तम् अन्ये कमपि न प्राद्युवञ्चि । किञ्च स प्रकाशस्तु यदि कश्चित् पुरुषः स्वपिति अथवा चक्षुषी निमील्य तिष्ठति चक्षुषा न पश्यति, कर्णेन न श्रृणोति, न वाचा वदति, न नासिकया जिघ्रति, न त्वचा स्पृशति, न वाचा वदति, न नासिकया जिघ्राति, न त्वचा स्पृशति, स्वप्ने सर्वाः एताः क्रियाः एकेनैव क्रियते । तत्र निष्प्रयोजना अवयवा बाह्येन्द्रियाणि ज्योतींषि प्रदीपाश्च (घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणि मिथ एकीभूतानि जायन्ते । स 'ब्रह्मप्रकाश' उच्यते ।

अव ज्योति (प्रकाश) या तेजस् का वर्णन करते है जिसे "नूर" शद्ध से जाना जाता है । यह प्रकाश तीन प्रकार का (माना गया) है । यदि जलाल नामक तमोंगुण से प्रकट होता है तो यह प्रकाश सूर्यरूप में, सुवर्णरूप में अथवा अग्निरूप में रहता है । यदि यह जमाल नामक सत्वगुण से प्रकट होता है तो यह चन्द्ररूप या रजत रूप या जल रूप में होता है । इनसे भिन्न जो तीसरा भेद है यह उक्त इन दोनों ज्योतियों से परे गुणस्पर्शरहित स्वरूपवाला प्रकाश कहलाता है । यह प्रकाश

---

१. अउम मात्राओं के पश्चात उनसे परे तुरीय अभात्र होता है जो शुद्ध चैतन्य है । ओम् उच्चारण के वाद तुरीय अर्धमात्रा ही अनहत नाद के रूप में स्फुरित होती है जिसका प्रयत्लजन्य उच्चारण भी नहीं हो सकता । इसे ही वह देवी-शक्ति माना गया जो अनुच्चार्य होता है । यथा-'अर्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः' । (दुर्गा-सप्त०)

केवल परमसिद्धों पहुंचे हुए सन्तों या ज्ञानियों को छोड़ कर दूसरों को प्राप्त नहीं होता है । जिसे हमारे पवित्र वेद (कुरआन्) में इस प्रकार कहा गया-परमेश्वर (अल्लाह) के प्रकाश (नूर) का दर्शन (केवल) उन्हीं सन्तों (निर्मल आत्माओं को) प्रत्यक्ष होता है जिन्हें स्वयं परमेश्वर (ही) कृपालु होकर (उनकी अपेक्षा रखते हुए) उन्हें ही अपनी ज्योति को देखने का मार्ग दिखाता है', सामान्यजन को ऐसा अवसर नहीं । (ये ही परमेश्वरीय प्रकाश का दर्शन या साक्षात्कार करते हैं)

यह प्रकाश या ज्योति (नूर) तब भी प्रकट रहकर प्रेरित करती रहती है चाहे तब यदि कोई मनुष्य सोता रहता हो या अपने नेत्रों को बन्द रख लेता हो या आँखों से नहीं देख रहा हो, कानों से सुन न रहा हो, अपनी भाषा या वाणी से कुछ बोल न रहा हो, अपनी नासिका से कुछ सूंघ न रहा हो, अपनी त्वग् (इन्द्रिय) से स्पर्श नहीं करता हो । क्योंकि तब भी स्वप्न में ये सभी क्रियाएं अकेले एक मनुष्य के द्वारा की जाती है ।[२] उस अवस्था में शरीर के सभी अंग, बाह्येन्द्रियां, प्रकाश (दीप ज्योति) ये सभी निरूपयोगी या निष्फल हो जाते हैं । घ्राणेन्द्रिय, रसना, चक्षुस्, त्वक् तथा श्रवणेन्द्रिय (फलतः अलग न रहकर एकीभूत तथा एक व्यक्तित्व के रूप में हो जाते है । इस प्रकार हो जाने पर तब ऐसी इस परमेश्वर की ज्योति को ''ब्रह्मप्रकाश'' कहा जाता है ।

हे सखे, त्वं विचारय । मया किमुक्तम् । यत इदं तीक्ष्णबुद्धेर्विचारस्य स्थानम् । सिद्धानां सिद्धेनैतद्विचारस्य प्रशंसायामाज्ञप्तम्-अयमेको विचारस्तस्मिन् मुहूर्त्तमात्रमवस्थानं भुवनत्रयगत-देवमनुष्य-दैत्यधर्मादपि श्रेष्ठतममिति ।

हे मित्र, जो मैंने कहा इस पर ध्यान देकर विचार कीजिये क्योंकि इस ज्योति को समझना तीक्ष्णबुद्धिवाले के विचार का स्थान या विषय है । सभी सिद्ध एवं सन्तों के महनीय सिद्ध (हमारे) देवदूत न यह आदेश इस प्रकाश की प्रतिविम्बभूत स्तुति पर दिया कि इस प्रकाश पर एकाग्रमन से ध्यान लगाकर क्षणमात्र ठहरना इतना श्रेष्ठ है कि यह त्रैलोक्यवर्ति देव, मनुष्य तथा दैत्य इत्यादि के धर्मों से भी बढकर श्रेष्ठ धर्म (कार्य) ही माना जाएगा ।

सः प्रकाशः शुद्धचैतन्यस्य स्वरूपम् । यथाऽस्मद्वेदे-परमेश्वर आकाशपृथिव्योः प्रकाशः । तं प्रकाशं सिद्धाः ज्योतिःस्वरूपं सदाप्रकाशं स्वयंप्रकाशञ्च वदन्ति । अयमर्थः स्वयं स्वयमेव नित्यप्रकाशोऽस्ति ।

---

१. 'यमेवैषवृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणते तनूं स्वाम् ' (कठो-२/२३)

२. ग्रन्थकार का मन्तव्य है कि जीव के लिए ईश्वर ही सृष्टि को रचना करता है किन्तु वस्तुतः वासनाओं के अधीन जीव ही रचना में समस्त सृष्टि करने वाला होता है । यह मत रामानुजाचार्य के सत्ख्यातिवाद से मिलता जुलता प्रतीत है ।

जगत् तस्मिन् दृश्यते वा न वा । ये वा एकात्मवादिनः ते तं प्रकाशरूपो न तु प्रकाशवानिति वदन्ति तथा सिद्धा अपि ज्योतिस्वरूपो न तु ज्योतिष्मानिति वदन्ति । तदुक्तमस्मद्वेदे-

"शुद्धं ब्रह्मप्रकाशः पृथिव्याकाशयोः । सः प्रकाशते यथा गवाक्षदीपे काचघटीमध्ये, काचघटी च प्रकृष्टप्रकाशतारावत् प्रकाशते । स दीपः प्रज्वालितइङ्गुदीफलतैलेन, स चेदिङ्गुदी-वृक्षो न पूर्वे न च पश्चिमे, निकटे तु शोभमाने इङ्गुदीतैलं प्रकाशते विमाग्निसंयोगेन प्रकाशस्योपरि प्रकाशः । मार्गं ज्ञापयति परमेश्वरः स्वप्रकाशस्य यमिच्छति ।

ऐसा प्रकाश जो कि विचार में प्राप्त होता है वह शुद्धचैतन्य का तात्विक स्वरूप है । जैसा कि हमारे वेद (धर्मग्रन्थ कुरआन) में बतलाया कि परमेश्वर ही आकाश तथा पृथ्वी का प्रकाश है; जिसे विद्वानों ने ज्योति स्वरूप कहा है किन्तु उसे ज्योतिष्मान् नहीं कहा । इसका आशय यही है कि वह परमेश्वर अपने (स्वयं के) नित्य प्रकाश से अन्य सभी प्रकाशों को अभिभूत कर प्रकाशित होता है, जिसमें जगत् चाहे दिखलाई दे या न भी दिखलाई दे । एकात्मवादी ऐसे प्रकाश को प्रकाश रूप बतलाते हैं किन्तु प्रकाशवान् नहीं कहते । इसी प्रकार भारतीय दार्शनिक भी प्रकाश ज्योतिस्वरूप कहते है और ज्योतिष्मान् नहीं बतलाते (क्योंकि वैसा बतलाने पर द्वैत की स्थिति बन जाने की आशंका होगी) । इसी को एक आदर्शवादी चिन्तक ने भी बतलाया ।

इसी दृष्टि से हमारे वेद में कहा कि-शुद्ध ब्रह्म पृथ्वी तथा आकाश का प्रकाश है । इसका आशय यह है कि प्रकाश एक दीपक या मोमबत्ती का प्रकाश है जो किसी काच की हण्डी में रखी जाकर किसी गोंखडे या दहलीज में स्थापित की जाए । तब दीपक और काच की हण्डी ये दोनों एक चमकीले तारे की तरह चमकती या प्रकाशित दिखाई देगी । यह दीपक हिंगोट के तेल से प्रज्जवलित है । वह इङ्गुदीवृक्ष न पूर्व में है और न ही पश्चिम में किन्तु दीपक के अन्दर प्रकाश की लौके समीप है, जिसकी शक्ति से दीपक जल रहा है तथा जो बिना इङ्गुदी तैज और अग्निसंयोग के ही प्रकाशित है । यह प्रकाश के ऊपर प्रकाशित होने वाला प्रकाश होता है । इस अपने प्रकाश का मार्ग परमेश्वर जिस पर कृपालु होकर दिखलाना चाहे उसे ज्ञापित कर देता है ।

अथ यद् विरक्तेन मया बुद्धं तदिदम् - गवाक्षपदं प्रयोजनं ब्रह्माण्डं प्रकटम् , दीपपदप्रयोजनं ज्योतिः-स्वरूपम् ,काचघटीपदप्रयोजनमात्मा । सा काचघटी आत्मा भवति तारासदृशप्रकाशवती भवति । अस्य दीपस्य प्रकाशने-काचघट्यपि दीपसदृशतां ज्ञापयति । प्रज्ज्वलितः स दीपो

व्यञ्जनया शुद्धचैतन्यस्य प्रकाशः शोभमानशुद्धचैतन्यस्वरूपवृक्षात् सः सर्वदिग्भ्यो व्यावृत्तो न पूर्वस्यां न पश्चिमायाम् । इङ्गुदीतैलपद-प्रयोजनं परमात्मा । तच्च तैलमतिसूक्ष्ममतिस्वरूपं स्वयं स्वयमेव प्रकाशते । प्रयोजनं नास्ति प्रज्ज्वलने ।

और इसी कारण सांसारिक भावनाओं से विलग या विरक्त रहने वाले मैंने इसके विषय में जो समझा वह इस प्रकार है-ऊपर के विवरण में जो गवाक्ष या दहलीज बताई इसका संकेतित स्पष्ट अर्थ ब्रह्माण्ड है तथा दीप पद का आशय ज्योतिर्मय प्रकाश है, काचघटी या हण्डी पद का संकेतार्थ आत्मा (जीवात्मा) है ।

और यह काचघटी तारा की तरह प्रकाशमान है । इस दीप के प्रकाश से काच घटी भी दीपक की समानता दिखलाती है । दीपक के प्रज्वलितरूप की व्यञ्जना से तात्पर्य है शुद्धचैतन्य-रूप वृक्ष ही अपनी शाखाओं की तरह (सभी) दिशाओं में फैलकर व्याप्त हो रहा है । जो न पूर्व दिशा में और न पश्चिम की ओर ही फैली है किन्तु प्रकाश की तरह सभी ओर प्रसरणशील है (और यह उदय और अस्त से भी रहित है) (इङ्गुदी) (हिंगोट) के तेल से परमात्मा का संकेत है जो अत्यन्त सूक्ष्म और स्वच्छ है तथा स्वयं ही प्रकाशित होता है तथा इसका प्रज़्वलित रहने का कोई प्रयोजन नहीं है ।

एकात्मवादिनां गुरुर्वासिती नामा आत्मप्रशंसायामिद-माज्ञप्तवान् - आत्मनस्तु काचघटी तथा प्रकाशवती यथा स्मार्तस्याग्नेः स्पर्शस्य वेदश्रवणस्य चापेक्षा नास्तीति । अत्यन्तसामर्थ्येन निकटे स्वयं स्वयमेव प्रकाशो भवति । अयं तैलप्रकाशः शुद्धब्रह्मप्रकाशेन सह प्रकाशो परिप्रकाशः । अयमर्थः-अतिस्वच्छत्वप्रकाशत्वाभ्यां प्रकाशः प्रकाशोपरि ईदृशोऽपि प्रकाशोपरि प्रकाशो न दृश्यते केनापि यावत् स्वीयैकत्वप्रकाशो (न) मार्गं ज्ञापयति । प्रयोजनमिदं शुद्धं ब्रह्म स्वप्रकाशेन प्रकाशसम्बन्धिनां सूक्ष्मानामावरणानामधो प्रकटनम् । कश्चनान्धकारावरणं वा तन्मध्येनास्ति । यादृशः शुद्धब्रह्मप्रकाशः परमात्मावरणे । अनेन प्रकारेण दीपस्तैललसहितः काचघट्यामावरणमध्ये प्रकटः काचघटी गवाक्षावरणमध्ये । एते शुद्धब्रह्म-प्रकाशव्यापारेण प्रकाशो-परिप्रकाशं कृतवन्तः ।

एकात्मवादियों के मान्य गुरु सन्त वासिती[1] ने ऐसी आत्मा की प्रशंसा में उपदेश देकर दिखलाया कि-आत्मा (शुद्धचैतन्य) की काचघटी स्वतः इस प्रकार प्रकाशित होती है जैसे विद्वान्

---

१. इनका पूरा नाम उस्ताद अबूबकर वासिती है । ये एक सूफी विद्वान थे तथा जुनेद और नूरी के साथी सन्त थे ।

स्मृति या धर्मशास्त्र के विधानों से प्रज्वलित अग्नि की पवित्रता में किसी अन्य पवित्रता की अपेक्षा नहीं रखना या वेद के स्वतः प्रामाण्य को प्रमाण निरपेक्ष मानना होता है । प्रज्वलित काचघटी से निकला प्रकाश जैसे स्वयं प्रकाशित होता है और यही निकटस्थ वस्तुओं को भी स्वतः प्रकाशित करता है । शुद्धब्रह्म के साथ आत्मसम्वन्धी तैल का यह प्रकाश शुद्धब्रह्म के सदृश होने से प्रकाश के ऊपर प्रकाश है । यहाँ आशय यही कि हिंगोट का तैल आत्म-स्थानीय होकर अपने स्वच्छत्व तथा प्रकाशकत्व जैसे गुणों से प्रकाश रूप होता है अतः यह प्रकाश के ऊपर प्रकाश है । प्रकाश के ऊपर रहते हुए भी ऐसा प्रकाश किसी को भी तब तक दृष्टिगोचर नहीं होता जब तक कि अपने एकत्व की आत्मज्योति उसे प्रकाश का मार्ग न दिखलाए । इसका आशय यही है कि प्रकाश सम्वन्धी सूक्ष्म आवरणों में ब्रह्म अपने प्रकाश से स्वयं प्रकट रहता है परन्तु वह इस प्रकार प्रकाश में गुप्तभाव रखकर भी अपने प्रकाशरूप से आसपास के अन्धकार को हटा देता है । इसका कारण यह है कि प्रकाशमय ब्रह्मज्योति में कोई आवरण या अन्धकार नहीं टिक सकता । जैसे परमेश्वर के वातावरण में शुद्धब्रह्म का प्रकाश, आत्माओं के आवरण में परमात्मा तथा शरीरों के आवरणों में आत्मा के प्रकट होती है । अतएव शुद्धब्रह्म के स्वप्रकाश कार्य के द्वारा प्रकाश पर प्रकाश हो जाता है । यही कहने योग्य तत्व है शुद्ध ब्रह्मज्योति और उस ज्योति की प्रतिविम्बभूत प्रतिज्योति इन दोनों को इस दृष्टान्त से स्पष्ट दिखलाया गया है कि ये प्रकाश शुद्धब्रह्म के व्यापार के द्वारा प्रकाश के ऊपर प्रकाश किये हुए रहेंगे ।[1]

विभाग-एकादश

ईश्वर साक्षात्कार - (दीदारे-हक)

अथेश्वरदर्शननिरूपणम् । ईश्वरदर्शनं सिद्धैः साक्षात्कार इत्युच्यते। बाह्यचक्षुषाऽन्तश्चक्षुषा च जानीहि । परमेश्वरदर्शनम् इहामुत्र बाह्याभ्यन्तरचाक्षुषे केषामपि सिद्धानां मुनीनां वा परमेश्वरकृत-शुद्धान्तःकरणानां नास्ति शङ्का-विप्रतिपत्तिः परस्परविरोधो वा । सर्वेषामप्यपौरुषेयग्रन्थवतां परिपूर्णानां दर्शनवतां प्रतिपन्नमस्मिन्नर्थे श्रद्धाऽस्ति। किं कुराणवतां किं वेदवतां किं तौरातवतां किमिञ्जीलवताम् । अज्ञानिनोऽन्धाश्च ते ये स्वस्वमार्गे परमेश्वरप्रत्यक्षं नाङ्गीकुर्वन्ति । सर्वसामर्थ्यवतः परमेश्वरस्य स्वप्रत्यक्षकरणे कुतो न सामर्थ्यम् ।

---

१. यहां संकेतित शद्ब है-गवाक्ष-शरीर या जगत् । काचघटी-जीवात्मा । दीप-प्रभुईश्वर, अथवा शुद्धचैतन्य। इङ्गुदीवृक्ष-ईश्वर। इङ्गुदीतैल-समष्टिभूत जीवात्मा। यहाँ आत्मा से जीव, परमात्मा से मायाशवलित ब्रह्म तथा शुद्धब्रह्म से परब्रह्म का अर्थ ग्राह्य है ।

अस्मिन् विषये सुन्नीनां सम्यगंमार्गोपलब्धिर्यदि निर्गुणं शुद्धचैतन्यं द्रष्टुं शक्नौति तदेदमत्यन्तबाधितम् , शुद्धस्य एकाकिनः सूक्ष्मस्यापरिच्छिन्नस्य यावत् परिच्छेदः सूक्ष्मावरणनाशश्च न भवति तावत् प्रत्यक्षस्यासम्भवः तस्मादीदृशस्य प्रत्यक्षस्यात्यन्ताभावः ।

अब हम परमेश्वर के साक्षात्कार पर विचार कर रहे हैं । भारतीय सिद्ध परमेश्वर के दर्शन को "साक्षात्कार" कहते हैं । इसे जाग्रद् अवस्था में आखों से होने वाला अथवा अप्रत्यक्ष रूप में ज्ञानचक्षु याअन्तरात्मा के द्वारा किया जाने वाला मानते हैं । परमेश्वर के साक्षात्कार होने में किसी भी मत के सिद्धों में कोई आशंका या विपरीत तर्कना या पारस्परिक विरोध नहीं हैं । इनके विचार में जिनके अन्तःकरण परमेश्वर ने शुद्धभावनाओंवाले कर दिये हो उन्हें इस लोक या परलोक में अपने बाह्य या आभ्यन्तर चक्षुओं के द्वारा परमेश्वर का साक्षात्कार हो जाता है । ऐसे सभी धर्मो के विज्ञ मनीषिगण जिनकी अपने अपने अपौरुषेय ईश्वरीय धर्मग्रन्थों (वेदादि) में निष्ठा है इन सभी के मतों में अपने धर्मदर्शनादि के अनुसार परमेश्वर का लोकोत्तर साक्षात्कार माना गया है फिर वे चाहे कुरान के अनुयायी (भारतीय) हो, तोरीत के अनुयायी (इजरत मूसा के अनुयायी) हो या इन्जील के मानने वाले (ईसाई) हों । अतएव वास्तव में वे लोग अज्ञानी और अन्धे हैं जो अपने अपने मार्गों में परमेश्वर के साक्षात्कार को प्रत्यक्ष या स्वीकार नहीं करते है । क्योंकि (जव) परमेश्वर सर्वशक्तिमान है तो उनका स्वयं अपने को प्रत्यक्ष करवाने में सामर्थ्य क्यों नहीं हो सकता है (वह अवश्य ही प्रत्यक्ष हो सकता है या वैसी सामर्थ्य अवश्य रखता है) इस विषय में इस्लाम मत के सुधीजन तो सुन्नीमत का अनुगमन करते हैं । इनने अपनी विचार व्यवस्था ठीक से रखी है । वे कहते हैं कि निर्गुण शुद्धचैतन्य को देख सकने कि यदि बात की जाय तो यह बात अशक्य है तथा बाधित भी है, क्योंकि वह एकाकी शुद्धचैतन्य सूक्ष्म एवं अपरिच्छिन्न या असीम स्थिति वाला है, अतएव जबतक[1] परिच्छिन्नभाव एवं सूक्ष्मआवरण का नाश या हटने की स्थिति नहीं बनेगी तब तक ऐसे निर्गुण ब्रम्ह का प्रत्यक्ष दर्शन या साक्षात्कार नहीं हो सकता । अतएव परमेश्वर की प्रत्यक्ष या साक्षात्कार की स्थिति या भाव अत्यन्त असम्भव है । (अर्थात् उसका साक्षात्कार का त्रैकालिक नित्य अभाव है)

यदुक्तं 'परलोक एवेश्वरप्रत्यक्षं न त्विहलोके' इति तन्निर्मूलम् । यदि तस्मिन् सर्वसामर्थ्यमस्मि तदा सर्वप्रकारेण सर्वस्मिन् देशे सर्वकाले च स्वप्रत्यक्ष- करणस्यापि सम्भवात् यस्यात्रादर्शनम् कठिनं खलु तस्य तत्रापि दर्शनम् ।

---

१. आशय यह कि शुद्ध चैतन्य या परमेश्वर परिच्छेदातीत या अपरिछिन्न होता है तथा जीव भी परिच्छिन्न तथा आवरण से पूर्ण होता है जब कि शुद्धचैतन्य आवृत या आवरण से युक्त नहीं रहता है । जीव का यह आवरण ही साक्षात्कार में बाधक होता है ।

जैसा कि (हमारे धर्मग्रन्थ में) कहा गया है कि यदि निर्गुण ब्रह्म को देखने की सामर्थ्य या शक्यता को माना जाए तो यह बात वाधित हो जाएगी क्योंकि यह अशक्य है यह बतला आये है ।'और यदि कहा जाए कि परमेश्वर का साक्षात्कार परलोक में ही सम्भव है, इसलोक में नहीं यह भी एक आधारहीन कथन है, क्योंकि यदि परमेश्वर में समग्र सामर्थ्य विद्यमान है तो सभी प्रकार से सभी देश एवं काल में वह अपना स्वकीय प्रत्यक्ष करवाने की (भी) सम्भावना या शक्यता रखेगा । दूसरे जिसका इस लोक में साक्षात्कार सम्भव नहीं हो तो उसका परलोक में भी प्रत्यक्ष होना या साक्षात्कार होना कठिन ही है ।

तथा चास्मद्वेदे श्रूयते-'यः कश्चिंदस्मिँलोके दर्शनसम्पदो निराशो भवति स तस्मिन्नवलोकसम्पदो हताशो भवति । ये तु 'हुक्मामार्ताजल' ईश्वरप्रत्यक्षं नाङ्गीकुर्वन्ति ते महापराधं कृतवन्तः । यदि शुद्धस्य प्रत्यक्षं नं सम्भवतीति वदेयुस्तदाऽस्य विवादस्यास्पदं किञ्चिदपि स्यात् । सर्वप्रकारेऽपि प्रत्यक्षं न सम्भवतीति वदद्भिरत्यन्तं महापराधः कृतः । यतो बहुधा परिपूर्णैः सिद्धैर्मुनिभिश्च बाह्यचक्षुषा परमेश्वरस्य दर्शनं शब्दश्रवणञ्च साक्षात्कृतम् । यदि तद्वाक्यश्रवणं सर्वदिक्ष्वङ्गीकरोषि, कुतस्तर्हि सर्वदिक्षु तद्दर्शनमपि नाङ्गीकरोषि । यथा परमेश्वरो देवता अपौरुषेयग्रन्थाः सिद्धाः महाप्रलयः साध्वसाधुनी परमेश्वरतीर्थादीनि चावश्यं श्रद्धेयास्तथा परमेश्वरदर्शनमप्यवश्यं श्रद्धेयम् । यत् ईश्वरदर्शनमेव सर्वषां प्रयोजनम् ।

इस विषय में हमारे धर्मग्रन्थ में कहा गया है कि– 'जो कोई इस लोक में ईश्वर के दर्शन की प्राप्ति न होने से निराश हो उसे परलोक में भी ईश्वर दर्शन की आशा से वंचित रहना पड़ेगा । जैसा हुक्मामार्ताजल के अनुमत-वर्ग[1] में शियालोग हैं, वे परमेश्वर के साक्षात्कार या प्रत्यक्ष को स्वीकार नहीं करते है तो वे अपने इस कार्य के कारण बड़े अपराधी ही माने जायेंगे । यदि वे अपना इस विषय पर यह तर्क रखते हुए बतलाएं कि-शुद्धचैतन्यरूप परमेश्वर का प्रत्यक्ष ही सम्भव नहीं तो ऐसे विवाद की (आधारभूत) तर्कधारा भी आधार रहित हो जाती है । क्योंकि परमेश्वर का किसी प्रकार भी साक्षात्कार नहीं हो सकता यह कहकर उनने वास्तव में परम्परा एवं अनुभव आदि के विपरीत यह एक भारी अपराध कर दिया हैं, क्योंकि

१. यह विवरण मुतजिल तथा शियामत की मान्यता से सम्बद्ध है । इनमें मुतजिल सम्प्रदाय की स्थापना वासित दूश्नअता ने की थी । इनके अनुसार ईश्वर का दर्शन या साक्षात्कार असंभव है तथा कहीं भी स्थूल नेत्रों से ईश्वर का दर्शन नहीं होता । शिया सम्प्रदाय के प्रवर्तक हजरत अली के अनुयायी है ।

जो अपने ज्ञान से परिपूर्ण मुनि एवं सिद्ध सन्त हैं उन सभी ने परमेश्वर का दर्शन और उनके शद्बो (वाक्यों) का श्रवण वहुधा साक्षात् प्राप्त किया हैं । यदि परमेश्वर के कहे गये शद्बों (वाक्यों) का श्रवण सभी दिशाओं में (स्थित) स्वीकार करते हो तो फिर उसका साक्षात्कार सभी दिशाओं में और स्थानों पर क्यों नहीं माना जा सकता है, तथा जिस प्रकार परमेश्वर को परमदेवता और उनके द्वारा अभिहित शद्बों वाले (वेद कुरआंन आदि) ग्रन्थों को अपौरुपेय मानते हुए सिद्धों की स्थिति, महाप्रलय, साधु और असाधुभूत वातें भी तथा तीर्थ आदि का सेवन या यात्रा करना आदि वातें उन्हीं ग्रन्थों से परमेश्वर के द्वारा कही गयी है, अतः जव ये सभी श्रद्धा के योग्य हैं क्योकि सभी का प्रयोजन परमेश्वर का दर्शन या साक्षात्कार ही है । इसके अतिरिक्त परमसिद्ध के परमेश्वर कथित वाक्यों में परमेश्वर विरोध क्यों कर होगा

किञ्च परस्परविरोध कुतः परमसिद्धवाक्ये । अस्मदीयैःपण्डितैः कश्चन प्रश्नःकृतो-दृष्टः परमेश्वरस्त्वयेति । तत आज्ञप्तवान् प्रकाशमानं पश्याम्यहं तम् । तदेतद्वाक्यमित्थं पठितम् - ज्योतिःस्वरूपं कथं पश्याम्यहम् तम् । युक्तं न भवति यत् परमसिद्धस्यादर्शनम् । यः प्रथमतोऽर्थोऽस्माभिः स्वीकृतो व्यञ्जनीकृतस्य तस्य दर्शनं प्रकाशाचरणं नीरूपं स्वीकुर्मः । व्यञ्जनाऽस्त्यत्यन्तशुद्धचैतन्यं नीरूपमिति । एतत् पाठद्वयं परस्परविरूद्धार्थकं न भवति किन्तु अद्भुतसिद्धोऽयं येनैकस्मिन् वाक्ये द्वयोः सिद्धान्तयोः निर्णयः कृतः ।

हमारे धर्म के एक सूक्ष्मवेत्ता ने जब ऐसा एक प्रश्न देवदूत (पैगम्बर मुहम्मद) से पूछा कि क्या आपने परमेश्वर को देखा है ? तब उन सिद्ध ने उत्तरभूत आज्ञा के रूप में (इस प्रश्न पर ध्यान देकर) यह वतलाया कि मैंने उन्हें एक दिव्य प्रकाश के रूप में देखा और देखता हूँ । इस वाक्य के उनके पाठ से यह वात निकली कि वह ज्योतिस्वरूप है और उसे मैं देख सकता हूँ । इस पर से यह व्याख्या करना युक्तिसंगत नहीं होगी कि परमसिद्ध देवदूत को परमेश्वर का साक्षात्कार या दर्शन नहीं हुआ-ठीक नहीं है ।

इस प्रकार के शद्बों की व्याख्या के आधार पर यह भी व्यक्त होता है कि परमेश्वर का साक्षात्कार एक दिव्यप्रकाश के आवरण के रूप में था जिसका देखना भी कठिन है क्योंकि वह शुद्धचैतन्यमय तथा रूपहीन होता है' (पर इससे हमें ईश्वर का साक्षात्कार होना तो स्वीकार करना पड़ेगा) । इस कथन से यह अर्थ निकाल लेना भी अनुचित होगा कि देवदूत को परमेश्वर

---

१. निर्गुण या शुद्धचैतन्यं अपरिच्छिन्न होता है अतएव उसकी अपरोक्षानुभूति ही होगी चाक्षुषप्रत्यक्ष नहीं होगा । जैसा कि-एष सर्वेषु भूतेषु गूढ़ात्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि : ।(कठो० ३/१२)

का दिव्यप्रकाश मात्र दिखलाई दिया परमेश्वर के दर्शन नहीं हुए । इनमें जो प्रथम व्याख्या दी गई है वह हम सभी मान्य करते हैं जिसमें परमेश्वर का प्रकाशरूप में होना या दिखना बतलाया है । दूसरी व्याख्या में परमेश्वर का स्वयं शुद्धचैतन्यरूप में होना कहा गया । इन दोनों व्याख्यारूप पाठों का परस्पर विरोधी आशय नहीं है किन्तु इनसे एक साथ अद्भूत रूप में दो समस्याओं का (उपर्युक्त प्रश्नों का) एक साथ समाधान रूप में हमारे अद्भुत या विलक्षण सिद्धदेवदूत ने निर्णय कर दिया है ।

तथा चास्मद्वेदे श्रूयते-तस्मिन् दिवसे मुखानि प्रसन्नानि सन्तुष्टाः पश्यन्ति हि स्वीयपरमेश्वरस्य स्पष्टं प्रमाणं दर्शनविषये । किमिदं दर्शनमपीश्वरसम्बन्धि जातमिति तस्य परिच्छिन्नेश्वरत्वस्य दर्शनं सम्भवति ।

क्वचित् कण्डिकायामिदं श्रूयते-'चक्षूंषि तन्न पश्यन्ति, स चक्षूंषि पश्यति । सः सूक्ष्मः सः सर्वज्ञ इति । व्यञ्जना नीरूपत्वस्यास्ति ।

जैसा कि हमारे वेद (कुरान) तथा धर्मग्रन्थों (हदीसों) में बतलाया है-कि "उस दिन सभी के चेहरे प्रकाश से निर्मल हो जाएगें और बड़े ही सन्तुष्ट भाव से ये अपने परमेश्वर का साक्षात्कार (या दर्शन) करेंगे "यह ऐसा प्रमाणभूत उल्लेख है, जिससे ईश्वर साक्षात्कार की पुष्टि होती है । क्योंकि यह (या ऐसा) दर्शन ईश्वरीय पद से सम्बद्ध हैं जिससे स्पष्ट है कि ईश्वर के परिच्छिन्नत्व का दर्शन सम्भव (होता) है ।

अस्यार्थः - चक्षूषि तन्न पश्यन्ति, निर्गुणत्वनीरुपत्वाभ्यां सः सर्वं पश्यति। सः परमसूक्ष्मो नीरूपश्च। अस्यां कण्डिकायां स इतिपदं तिष्ठति तेन व्यज्यते शुद्धचैतन्यस्याप्रत्यक्षत्वम् ।

इसके अतिरिक्त दूसरे पाठ में परमेश्वर के रूपरहित भाव को भी ग्रन्थों में इस प्रकार दिखलाया है-"नेत्र उसे देख नहीं सकते किन्तु वहीं नेत्रों के अन्तः स्थित रहकर देखता है, वहीं सूक्ष्मतम एवं सर्वज्ञ है ।" इस कथंन का भाव या व्यञ्जना यही है कि वह रूपहीन है । उसे स्थूलनेत्र नहीं देख सकते परन्तु वह नीरूप रहकर भी सभी को देखता है । वह परमसूक्ष्म एवं नीरूप (आकार रहित) है । इस कण्डिका में 'सःपद' रखा गया है जिससे यह प्रतीत होता है कि शुद्धचैतन्यरूप परमेश्वर निराकार है (तथा अप्रत्यक्ष है ।)

ईश्वरस्य दर्शनं पञ्च-प्रकारकम् - तेषु प्रथमदर्शनं स्वप्ने मनश्चक्षुषा । द्वितीयंदर्शनं जाग्रति शिरश्चक्षुषा । तृतीयं तु स्वप्नजागरणयोर्मध्ये विशेषनिरहंकारतया । चतुर्थं विशेषपरिच्छिन्ने दर्शनम् । पञ्चमदर्शनमेकस्वरूपस्य बहूनां परिच्छिन्निानां बाह्यानामाभ्यन्तराणान्ञ्च

जगतां मध्ये । एवमेव दृष्टं परमसिद्धेन तस्मिन् समये स्वयं न स्थितः दृग्दृश्ययोरैक्यञ्च स्थितम् ।

परमेश्वर का दर्शन या साक्षात्कार पांच प्रकार से (सम्भव) होता है इनमें प्रथमदर्शन स्वप्न में मनोदष्टि से होता है । दूसरा दर्शन जाग्रदवस्था में अपने नेत्रों से (मूर्धा दृष्टि से)[1] होता है, तीसरा दर्शन स्वप्न तथा जागृदवस्था के मध्यस्थित दर्शन आत्मा के निरहंकार भाव की स्थिति में होता है ।(क्योंकि यही स्थिति यहां इसके लिये मानी गयी है) । चतुर्थदर्शन विशेष परिच्छिन्न[2](चैतन्य की विशेष निर्धारित सीमा) अवस्था में होता है । पांचवा दर्शन अनेक परिच्छिन्न वाह्य एवं आभ्यन्तर संसारों में (जीव का परमेश्वर से एकभावापन्न हो जाना या आत्मा(जीव) का परमात्मा में लीनभाव प्राप्त करना) हो जाता है ।

अथ च स्वप्नजाग्रन्निरन्तरमैक्यं ज्ञातमभूत् । किन्तु बाह्याभ्यन्तरचक्षूंषि एकीभूतान्यभवन् । दर्शनस्येयमेव मान्यता परिपूर्णा । एतद्दर्शनस्येहलोक परलोकापेक्षा नास्ति, सर्वस्मिन् देशे काले च सम्भवति ।

ऐसा ही परमसिद्ध देवदूत (पैगम्बर) ने परमेश्वर को साक्षात् रात्रि में देखा तो जिस दशा में देखा तो इस दशा में उन्हें न तो अपना भान रहा केवल द्रष्टा एवं दृश्य (जीव तथा ईश्वर) का एकत्व हो गया था तथा उन्हें उस अवस्था में स्वप्न, जागृत तथा इसकी मध्यावस्था की निरहंकारता की एकता का भान हो रहा था । तव वाह्य तथा आभ्यन्तर (इन्द्रियां तथा अन्तःकरण) दृष्टियां एक हो गयी थी ।

ईश्वरदर्शन या साक्षात्कार की यही मान्यता परिपूर्ण है कि इसके लिये इहह-लोक या परलोक की अपेक्षा नहीं रहती तथा यह सभी देश एवं काल में (किसी भी समय) सम्भव होता है।

विभाग द्वादश

नामों का निरूपण (इस्में–आजम)

अथ नामानि निरूप्यन्ते - परमेश्वरस्यानन्तानि नामानि मर्यादापरिच्छेदातीतानि मुतलकहत्शुद्धचैतन्यस्य सिद्धाः शून्यं निर्गुणं

---

१. मूलगत 'शिरश्चक्षुषा' पद का आशय यही प्रतीत होता है कि समाधि के द्वारा सहस्त्रार-चक्र में प्रवेश की स्थिति के होने वाले अनुभव होने की बात । जैसा कि कहा भी हैं --

शतं चैका हृदयस्य नाड्यः तासां मूर्धानमभिमिःसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वगन्या उत्क्रमणे भवन्ति ।। (क० - ६/१६)

२. ईश्वर की परिच्छिन्न-अवस्था उसी आकार में रहेगी उसका निर्माण भी उसी आकार में बनता है । अन्तःप्रकाश आदि में आकार का आभास यहां अभीष्ट है । यह सविकल्पक समाधि में संभव होता है, क्योंकि शुद्धचैतन्य आयामीय-परिच्छिन्नता से परे होता है ।

निराकारं निरञ्जनं सत्-चित्-आनन्द इति वदन्ति । अस्मद्वेदमुखस्य अल्लाह-इत्यस्य ओम् इति वदन्ति । 'हु' इत्यस्य स इति वदन्ति । ज्ञानापरपर्याय 'हलम् ' सम्बन्धात् 'आलिम' इति वदन्ति। सिद्धाश्चैतन्यमिति नाम वदन्ति। हैयो नित्यमिति। कादर समर्थः। 'मुरीद' स्वतन्त्रः। समीअः श्रोता। वसीरो' दृष्टेति वदन्ति। वचनसम्बन्धाद् वक्तेति फिरिस्तानां देवतेति। 'मजहर-अतमस्य महावतार इति। अवतारस्तु स यस्मिन् समये यत्र परमेश्वरसामर्थ्यं यावत् प्रकटम्, अन्यत्र कुत्रापि तस्मिन् समये प्रकटी भवितुं न शक्नोति। आकाशवाणीति अज्ञप्तवान् परमसिद्धः बाह्यमाकाशवाणीत्याज्ञप्तवान् परमसिद्धः। सर्वाभ्यः आकाशवाणीभ्यो मह्यामिममत्यन्तकठिनतरा घण्टाभ्रमर-शुद्धानुकारिणी। यतोऽयं शद्वो आकाशात् प्रकटो भवति अत आकाशवाणीत्युयते। अपौरुषेयचश्चग्रन्थोऽस्माकं 'कुराणम् ' सिद्धानां वेद इत्युच्यते। पिशाचानां मध्ये सज्जनाः 'परी शद्ववाच्याः, तेषामेव दुर्जनाः देवशायाती' राक्षसा जिन्नाश्चोच्यन्ते। अथ आदमी मनुष्यः, नबी सिद्धः, 'बली ऋषीश्वरः इति नाम कथयन्ति।

अब परमेश्वर के नामों का निरूपण करते हैं। परमेश्वर के अनन्त (असंख्य) नाम है जिनकी कोई सीमा नहीं है (अर्थात ये मर्यादा एवं परिच्छेद से परे है)। इन्हें हमारे सिद्ध तथा पैगम्बर मुतलक' बहत् तथा इन्हें ही भारतीय मनीषी शुद्धचैतन्य, तथा शून्य, निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, सत्, चित, आनन्द, के नाम से अभिहित करते हैं। हमारे वेदकुश (भूत) "अल्लाह" (पद) को भारतीय सिद्धऋषि ॐ पद से, "हु" को ये "स" (वह) पद से कहते हैं, ज्ञानवाचक पद "हलम्" (हइल्म) है तथा इससे सम्बद्ध व्यक्ति को "आलिम"[२] कहा गया जिसे सिद्ध चैतन्य कहते हैं। "हेयय" पद को नित्य शद्व से जाना जाता है इसी तरह "कादर" को समर्थ, "मुरीद" को स्वतन्त्र, समीअ को श्रोता तथा "वशीर"[३] को द्रष्टा कहते हैं। वचन या शद्व के सम्बन्ध से कहे गये "वक्ता"। फिरिश्ता (फरिश्ता) का "देवता" और "अजहर-अतम"[४] का महावतार नाम है। जहां परमेश्वर जिस समय अपनी इच्छा से जितने

---

१. मुतलक्-हत् - ईश्वर-तन्त्र

२. अ[illegible]म ज्ञाता तथा स्वतन्त्र अर्थ है।

३. [illegible]

४. [illegible] प्रकट होने का स्थान तथा अतम् का परिपूर्ण होना अर्थ है।

समय तक किसी रूप में प्रकट हो कर जन्म ग्रहण करें और अन्यत्र कहीं उतना सामर्थ्य या उसका ऐसा रूप प्रकट नहीं हो तो किसी प्राणी के रूप में परमेश्वर का यह जनम लेना ''अवतार'' कहलाता है । जिसे आकाशवाणी या ब्रह्मावाणी कहते हैं उसका हमारे सिद्ध ने ''वहय''[1] नाम आज्ञापित सन्देश अर्थ में किया है । इसके विषय में हमारे देवदूत (पिगम्बर) ने बतलाया कि स्वर्ग से आने वाली आकाशवाणियों में जो अत्यन्त दुरूह है और जो किसी घण्टे की आवाज जैसी या भ्रमरों के गुंजन जैसी नादमयी है यही शद्ब ''ब्रहम'' कहा गया है और आकाश से प्रकट होने वाला यह होता है । आकाशचारी पिशाचों के बीच सज्जन प्रकृतिवाली स्त्रियां ::परी'' और इन्ही मे जो दुर्जन प्रकृति की स्त्रियां है उन्हें ''देवशायाती'', कहते हैं, राक्षस को ''जिन्न'' कहते हैं, ''आदमी'' को मनुष्य, ''नवी'' को सिद्ध तथा ''वली'' को ऋपि या ऋषीश्वर नाम कहा गया है ।

त्रयोदश

सिद्धत्व तथा ऋृषीश्वरत्व का निरूपण

अथ सिद्धत्वऋषीश्वरत्वनिरूपणम् - सिद्धास्त्रिविधाः। एकः सः येन परमेश्वरो दृष्टो बाह्येनाभ्यन्तरेण वा चक्षुषा। द्वितीयः सः येन शद्बः श्रुतः, स शद्बो वर्णात्मको वा ध्वन्यात्मको वा। तृतीय सः येन देवता दृष्टा तच्छद्बो वा श्रुतः। सिद्धत्वम् ऋषीश्वरत्वञ्च त्रिविधम् । एके सिद्धत्वमृषीश्वरत्वञ्च निर्गुणसम्बन्धि, द्वितीयं सगुणसम्बन्धि तृतीयमुभयसम्बन्धि ।

निर्गुणसम्बन्धि रूहसिद्धत्वम् यथा तेन तत्वसमुद्रस्य निर्गुणत्वसम्बन्धि द्रष्टं तेनैवोपदिष्टं तदीयलोकैर्न स्वीकृतम् निर्गुणसम्बन्धित्वा- दल्पैः स्वीकृतं तदुपदिष्टम् । ते नाशसमुद्रे निमग्नाः विरागिणः समये स्वीयान् शिष्यानुपदिशन्ति निर्गुणत्वम् । तदुपदेशात् कोऽपि न ज्ञानवान् जायते फलं च नाप्नोति । मार्गमध्येगच्छन्तो विनश्यन्ति च ते परमेश्वरञ्च न प्राप्नुवन्ति ।

अब सिद्धत्व तथा ऋषीश्वरत्व 'आदि' का निरूपण करते हैं । सिद्ध तीन प्रकार के माने गये हैं । इनमें प्रथम वे है जिनने अपने बाह्य अथवा आभ्यन्तर चक्षुओं से परमेश्वर का दर्शनया साक्षात्कार किया है । दूसरे वे हैं जिनने परमेश्वर का वर्णमय शद्व या ध्वनि का श्रवण किया है तथा तीसरे वे हैं जिनने किसी देवता का दर्शन प्राप्त किया है अथवा उसका शद्व सुना है । सिद्धत्व तथा ऋषीश्वरत्व भी इसी कारण तीन प्रकार का माना गया । जिनमें प्रथम

---

१. वहय शद्व से ईश्वरीयसन्देश अर्थ लिया जाता है ।

हैं परमेश्वर के निर्गुणत्व से सम्बद्ध, दूसरा है उनके सगुणत्व से सम्बद्ध तथा तीसरा निर्गुण तथा सगुणत्व दोनों से सम्बद्ध ।

इनमें प्रथम प्रकार के सिद्ध परमेश्वर के निर्गुण सम्बन्धी मान्यता से सम्बद्ध हैं । जिनने तत्वसमुद्र के निर्गुण सम्बद्ध परमेश्वर के स्वरूप[1] को देखा, अतः वे रूह या आत्मा के द्वारा परमेश्वर से तादात्म्य स्थापित करने वाले हैं । किन्तु उनके अनुयायिजन ने उनका निर्गुणत्व सम्बन्धी उपदेश स्वीकार नहीं किया तथा कुछ दूसरों ने उनके इस उपदेश को मान लिया । ऐसे सन्त जो कि सांसारिक सुखों का परित्याग कर समय समय पर अपने शिष्यों को परमेश्वर के निराकार या निर्गुणरूप का उपदेश देते हैं किन्तु. उनके 'ऐसे' उपदेश से किसी का अज्ञानान्धकार नहीं दूर हुआ फलतः वे अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो पाए तथा उन्हें ईश्वरप्राप्ति के मार्ग में चलते हुए भी ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो पाने के कारण उनके विचारों में भटकाव आ गया ।

सिद्धत्वं सगुणसम्बन्धि यथा मूसासिद्धत्वम् । तेन महीरूहाग्नौ प्रकाशं द्रष्टम् , अभ्रमध्ये वाक्यं श्रुतम् । तन्मार्गानुयायिनस्तदनुकारिणश्च सगुणसम्बन्धिनस्तन्मध्ये निमग्ना सन्तः प्रतिमोपासकाः जाता तैरीश्वरस्याज्ञाभङ्गः कृतः । उच्छृङ्खलाः केचनाद्यन्तेऽस्माकं समये पूर्णानुकारिणस्ते स्वव्यापारं कृतवन्तोऽमुना प्रकारेण जीवन्ति । निर्गुणत्व-सम्बन्धरहिताः सन्तः सगुणत्वसम्बन्धिनिमग्नाः सुन्दररूपं पश्यन्तोऽनुरज्जकशद्बं संशृण्वन्ताः असत्प्रकारेण क्रीडन्तो बद्धाः भवन्ति । तत् पृष्ठतोऽनुगमनं न युक्तम् , यद्रूपं स्वस्वरूपं प्रदर्श्य चेतो हरति तत् कालदृष्टेर्दूरे नयति । अतो मनस्तत्र देयं यत्तव सङ्गे स्थितं वर्तते स्थास्यति च ।

देवदूत मूसा का सिद्धत्व सगुणत्व से सम्बद्ध है । अपने उपासनाक्रम में उन्होंने महीरुह (वृक्षों की झाडियों) के मध्य परमेश्वर की ज्योति (प्रकाशमय अग्निरूपी नूर) के दर्शन प्राप्त किये और उन्हें मेघों की गड़गड़ाहट में परमेश्वर की वाणी श्रवणगोचर हुई थी । इसी कारण पैगम्बर मूसा ईश्वर का साक्षात्कार प्राप्त करने वाले माने गए थे । आगे चल कर उनके मार्ग के अनुयायी जन ने उनके द्वारा ईश्वर की ज्योति के दर्शन एवं वाणी के श्रवण को लेकर ईश्वर को सगुणत्व से सम्बद्ध मान कर विचार क्रम को आगे बढ़ाया तथा सगुणत्व के विचारों में डूब कर अन्ततः वे प्रतिमा पूजक हो गये । उन्होंने ईश्वर के भेजे गये सन्देशों (आदेशों)

---

१. यहां रूहसिद्धत्व से हजरत ईसा का संकेत है ।

की अनदेखी करदी (या उन्हें भंग कर डाला) । इस प्रकार ये आरम्भ से ही उचित मार्ग से हट गये तथा अन्ततः अपनी ऐसी प्रवृत्ति के अभिभूत होकर ये वर्तमान समय में भी उसी क्रम एवं प्रवाह में लीन रहते हुए अपने कार्यो को करते हुए अपना जीवन चला रहे हैं । ये लोग परमेश्वर के निर्गुणत्व के सम्वन्ध से हट कर उसके सगुत्व के सम्वन्ध में युक्त होते हुए उसके सुन्दर स्वरूप के दर्शन करने वाले तथा उसके विचारों से क्रीड़ा करते हुए (या ऐसे विचवारों से अपना मनोरंजन करते हुए संसार में) बन्धन प्राप्त करते हैं । ऐसे लोगों का अनुसरण करना उचित नहीं है । क्योंकि जिसके रूप का दर्शन चित्त को हर लेता है वह क्षण या काल अज्ञान दृष्टि से युक्त होकर तुम्हें ईश्वर से दूरकरने वाला है अतः ऐसे सात्विक या निर्गुण ईश्वर में ही मन को लगाना चाहिए जो सदा तुम्हारे साथ अवस्थित रहें तथा जो आगे भी सदैव वैसा बना रहे।

तृतीयमुभयसम्बन्धि-अस्यार्थ अत्र सगुणत्वनिर्गुणत्व-सम्बन्धिनोरेकीकरणं कृतम् । यथाऽस्मद्वेदे श्रूयते "नास्ति तत्सदृशं वस्तु" । इयं व्यञ्जना निर्गुणत्वमान्यतायाम् । 'अथ च श्रोता दृष्टा च' इयं व्यन्जना सगुणमान्यतायाम् । इयं परममान्यता यद् द्वयोरेकीकरणम् सिद्धत्वसमापनञ्च सर्वलोक-शिरोमणि-रूपाऽसाधारणी पूर्वपश्चिमायातं सर्व जगद् व्याप्य स्थितवती। सिद्धत्वं निर्गुणत्वसम्बन्धि सिद्धत्वात् परिपूर्ण सिद्धत्वं निर्गुणत्वसगुणत्वयोराच्छादकम् । यथाऽस्मद्वेदेऽपि श्रूयते -- "हुवल् अव्वल् बलआसिर आबिर वजाहिर बलवातिन् । अस्यार्थः स आदिः सोऽन्तः स प्रकटः सः गुह्यः' स निर्गुण', सः सगुणः सः परिच्छिन्न, सर्वमिदं, तदतिरिक्तं किमपि वस्तुनास्ति । ईदृशंसिद्धत्वमेतेषां परिपूर्णानुयायिनामेव विशेषतः । यथोक्तमस्मद्वेदे --"सर्वमतानुसारिभ्यो भवन्तः उत्कृष्टाः सगुणनिर्गुणयोर्द्वयोरप्येक्यैन उपासनाकरणात् ' । अस्यार्थ-परमसिद्धानुसारिणस्ते चेश्वरसत्कृत-परमसिद्ध-समयवर्तिनः सिद्धास्तत्परिवारभूतास्तत्प्रतिनिधिभूताश्च-अबूबकर-उमर-उस्मान-अली-हसन-हुसैनाभिधाः। अन्यस्मिन् समये चैतादृशाः जुन्नून-मिसिरी-जुनेदो, ज्ञानिनां गुरुः मीरान् मुहद्दीन इबन् ; मद्गुरुः मियाँ मीरमुल्ला-शाह मियाँबारी इत्यादयः ।

सिद्धत्व का तीसरा प्रभेद उभयसम्बन्धी है । इसका अर्थ है - सगुणत्व एवं निर्गुणत्व से सम्बद्ध सिद्धत्व का एकीकरण हो जाना । यह दोनों स्थितियों में मध्यवर्तीग्स्थान वाला है जो एकेश्वरवाद की पहल करता है सगुण और निर्गुण को अलग गुण न मान कर । इसका उदाहरण हमारे धर्म के प्रवर्तक पैगम्बर स्वयं है तथा जिनका सिद्धत्व पूर्ण भी इसी कारण है । जैसा कि हमारे वेद में है कि "उस परमेश्वर के समान अन्य कोई नहीं है तथा वह श्रोता तथा द्रष्टा है" इसके द्वारा यह संकेतित है कि वह सगुण होना चाहिए परन्तु इन दोनों मान्यताओं के एकीकरण से एक ऐसी परममान्यता बनती है जो परम या अन्तिम सिद्धान्त रूप है । यही सिद्धत्व है तथा यही सगुण मान्यता की समग्रता है । यह सिद्धान्त सभी वादों का समापनरूप है जो सभी लोकों के उपर अवस्थित शिरोमणी स्वरूपवाला और अपनी असाधारण स्थिति से पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए समग्र भूमण्डल को परिव्याप्त कर स्थित है । यह परमसिद्धत्व ईश्वर के निर्गुण रूप के प्रतिपादक पक्ष को लेता है और सगुणभाव का आच्छादन (या प्रत्याख्यान करता है) या उसके अनुगामी विचारकों को निराश करता है । इसी विचारसरणि या तार्किक पद्धति से ईश्वर के सगुण सिद्धत्व का भी प्रत्याख्यान हो जाएगा । क्योंकि ईश्वर के निर्गुणत्व की उपर्युक्त रूप से सिद्धि हो जाने और न निर्गुणत्व तथा सगुणत्व को आच्छादित करते हुए जो परिपूर्णता होगी वही सिद्धमत की उच्च भूमि पर आसीन होगी जहां निर्गुणत्व एवं सगुणत्व दोनों को व्याप्त करने वाली परिपूर्ण-सिद्धता है । जैसा कि हमारे वेदा उपनिषद में कहा गया है - "हुवल् अव्वल्, वल् आशिर, वल् वातिंन्" इसका अर्थ है - वहीं आच्छादित या गुप्त भी, वहीं सर्वगुण सम्पन्न तथा वही अकेला सब है तथा उसके अतिरिक्त दूसरी वस्तु नहीं और उसके आगे और पीछे (भी) कोई नहीं है ।"

इस प्रकार यहां जो कहा गया वह एक परिपूर्ण सिद्धान्तभूत तथ्य है जो एक मार्ग बनकर अनुसरणीय है । यह उन्हीं के द्वारा बतलाया भी गया है कि जो इस पर श्रद्धा करने वाले या जानकर अनुसरण करने वाले हैं । हमारे धर्मग्रन्थ में यह बात कही है कि - "तुम उन सभी धर्मो एवं सम्प्रदायों में सर्वोतम स्थिति रख रहे हो क्योंकि तुम ईश्वर के सगुण एवं निर्गुण दोनों तत्वों को एकीभूत भाव में देखते हो "। यह बात परमसिद्ध पैगम्बर मुहम्मद तथा उनके समकालीन अनुगामीजन को सन्दर्भित करती है जो परमेश्वर के द्वारा सम्मानित परमसिद्ध के सिद्धान्तों पर अवस्थित हैं । उन परमसिद्ध के परिवाररूप तथा प्रतिनिधरूप में है - अबुबकर[1],

---

१. इन नामों में प्रथम चार खलीफा हुए हैं । इनमें खलीफा अबूबकर - इनका नाम अबूबकर अद्बुल्लाह था ये पैगम्बर इजरत मुहम्मद के बाद के उत्तराधिकारी प्रथम खलीफा निश्चित किये गये, जिनका स्थितिकाल ई. ६३२ से ६३४ तक रहा। खलीफा उमर का नाम उमर बलराज था। ये दूसरे खलीफा हुए। इनका समय ६३४ ई. से ६४४ ई. तक रहा। खलीफा उसमान या उसमान बाअपकान तीसरे खलीफा हुए। स्थितिकाल ६४४ ई. से ६५६ तक। खलीफा अली-या अली अबीतालिब, ये चौथे खलीफा थे तथा पैगम्बर मुहम्मद के जामाता थे। इनका अपनी वीरता तथा धर्मनिष्ठा के कारण अतिशयसम्मान था तथा इन्हीं के पुत्र हजरत हसन तथा हजरत हुसैन थे जो पैगम्बर के दौहित्र या नवासे थे। इस्लाम के धार्मिक जगत् में ये सभी अपने आश्चर्यकारी वरदान आदि के कारण अतिप्रसिद्ध सर्वज्ञात विभूतियों में माने जाते हैं ।

उमर, उस्मान, अली, हसन तथा हुसैन । अन्य समय में भी ऐसे सिद्धों के क्रम में जुन्नून-मिसरी[1], जुनेदी[2] सुन्नियों के गुरु मीरान्[3] मुहदीन डूवन अरवी तथा मेरे गुरु मियाँ मीर[4] मुल्लाशाह आते हैं ।

विभाग चतुर्दश --

दिशाएँ

अथ दिङ् निरूपणम् - अस्मदेकान्तवादिनः पूर्व-पश्चिमोतर दक्षिणोर्ध्वाधोभेदेन षड् (दिशो) वदन्ति । सिद्धाः दशेति च वदन्ति । द्वयोर्द्वयोर्दिशोर्मध्ये एकैका विदिक् आग्नेयी-नैर्ऋती वायव्यैशानीति दश दिशो वदन्ति । तत्र पूर्वदक्षिणयोर्मध्येआग्नेयी दक्षिणपश्चिमयोर्मध्ये नैर्ऋती, पश्चिमोत्तरयोर्मध्ये वायवी, उत्तरपूर्वयोर्मध्ये ऐशानीति च ।

अव दिशाओं का निरूपण करते हैं । हमारे एकात्मवादी मत के अनुसार दिशाएं छः वतलाई गयी हैं जो - पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उर्ध्व (उपर) तथा अधः (पाताल) कहलाती है । भारतीय मत में अवस्थित विदिक् दिशाएं भी होती है जिन्हें क्रमशः आग्नेयी, नैर्ऋती, वायव्यी तथा ऐशानी कहते हैं तथा इनका परिगणन कर दिशाएं दस हैं । इनमें पूर्व एवं दक्षिण के मध्यवर्ती कोण में आग्नेयी, दक्षिण पश्चिम कोण में नैर्ऋती, पश्चिम तथा उत्तर के मध्य कोण में वायव्यी तथा उत्तर पूर्व के मध्य कोण में ऐशानी[5] दिशा हैं । (इस प्रकार भारतीय मत में इस दिशाए हैं ।)

---

१. दुननूनमिसरी - दुननून अबुल-फैज-मिसरी इनका पूर्ण नाम है। ये इजिप्ट के प्रख्यात सन्त थे। जिनकी मृत्यु ईस्वी ३६० में हुई थी। ये गम्भीर विचारक के रूप में प्रसिद्ध रहे।

२. जुनेद - अब्दुलकासिम मुहम्मद जुनैद। इनकी वगदाद में ईसवी ८६० (८६०) में मृत्यु हो गयी थी। इनके अनुयायी जुनैदी कहलाये।

३. मीरानमुहद्दीन हूवन अरवी - ये प्रसिद्ध संत तथा गुरु थे तथा सर्वोच्च आदर के स्थान रहे।

४. मिया मीरमुल्लाशाह - ये सीसामुल्ला नाम से भी प्रसिद्ध थे तथा दाराशिकोइ का आदर इन्हें प्राप्त था। इनने सूफीदर्शन तथा धर्म पर कई ग्रन्थों की रचना की थी। ये सूफी मत में कादरीमत के विद्वान् तथा दारा के मान्य व्यक्ति रहे थे।

५. दिशा एक परिच्छेदक तत्व है। इनसे परिमाण का निर्माण होता है। भारतीय मत में ये दस मानी गयी हैं। ये पूर्वादि दिशाएं पृथ्वी तथा सूर्य की सापेक्षता से कल्पित है। अतः इनकी अन्तरिक्ष में सम्भावना या स्थिति नहीं मानी जाती।

विभाग पञ्चदश -

आकाश (आसमान)

अथासमानापरपर्यायगगननिरूपणम् - सिद्धाः अष्टौ आकाशा वदन्ति। तत्र सप्तग्रहाणां भ्रमणशीलानां सरणिरूपाणि सप्तगगनानि । ते च ग्रहाः "जुहल मुश्तरी-मिटरीख-शम्स-जुहरै-उतारिद-कमर इति वदन्ति । ग्रहनामानि सिद्धाः-शनैश्चर-बृहस्पति-मंगल-सूर्य-शुक्र-बुध-चन्द्राः इति वदन्ति । सर्वनक्षत्राणामाधारभूतं गगनमष्टममेतस्यगगनस्य दार्शनिका अष्टमं नक्षत्रगगनमिति नाम वदन्ति। यथाऽस्मद्वेदे श्रूयते-गगनानि पृथ्वी च कुर्शीमध्ये सम्मान्ति नवमं महाकाशं ज्ञात्वा गगनमध्ये तन्निक्षिप्तं सः सर्वव्यापक इति स सर्वेषां गगनानां पृथ्वीनां कुर्श्याश्चाच्छादक इति ।

---------अब हम आसमान नामक गगन या आकाश[1] का निरूपण करेंगे । सिद्धों ने इस आसमान के आठ प्रभेद माने हैं जिनमें सात भ्रमणशील ग्रहों के मार्गरूप में हैं जिनके हमारे मत में क्रमशः नाम है - जुहल (१), मुश्तरी (२), मिटरीख् (३), शम्स (४), जुहरा (५), उतारिद (६), तथा कम्र (कमर) (७), है । जिनके भारतीय सिद्धों के अनुसार क्रमशः शनैश्चर, बृहस्पति मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध तथा चन्द्र नाम हैं । सभी नक्षत्रों का आधारभूत गगन आठवां है जिसे दार्शनिकों ने आठवां नक्षत्रगगन कहा है । जैसा कि हमारे वेद में कहा है कि - "नवम आकाश महाकाश कहलाता है, जिसकी गणना उपर्युक्त आकाशों के आठ प्रभेदों में नहीं होती क्योंकि यह सर्वव्यापक है अतः इसके सभी आठों आकाश पृथ्वी तथा परमेश्वर का सिंहासन या कुर्सी[2] इसी में समाविष्ट है तथा यह सभी को आच्छादित कर अवस्थित रहता है ।

विभाग षोडश

पृथ्वी एवं उसके विभाग (जमीन)

अथ पृथिवीनिरूपणम् - पृथिव्याःसप्तभेदाः ते च भेदाः सप्त पुटान्युच्यन्ते । तानि च पुटानि -अतल-वितल-सुतल-तलातल-रसातल-

---

१. आसमान एक नक्षत्रगति का घुमाने वाला वृत या क्रान्तिवृत कहलाता होता है किन्तु आकाश शून्यचप्राय तत्व का नाम है जो अवकाश देने वाला होता है; अतः आसमान और गगन पर्याय नहीं है ।

२. कुरसी आठवां आसमान है तथा यह सातों आसमानों का घेरने वाला वृत होता है । इसमें पूर्व पूर्व क्रान्तिवृत उत्तरोतर को अपने वृत में लिये रहते हैं । महाकाश को इसी कारण आकाश तथा 'खं ब्रह्म' भी वेद में कहा गया हैं ।

पातालाख्यानि । अस्मन्मतेऽपि सप्त भेदाः । यथाऽस्मद्वेदे श्रूयते परमेश्वरो यथा सप्तगगनानि तद्वत्पृथिव्याः सप्त विभागाः कृतवान् ।

अब पृथ्वी का वर्णन करते हैं - पृथ्वी के सात भेद या पुट हैं (जिन्हें अधोलोक कहते हैं) इनके नाम हैं - अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, तथा पाताल । हमारे धर्मग्रन्थ के अनुसार भी पृथ्वी के सात भेद है । जैसा हमारे वेद में आता है - जिस परमेश्वर ने सात गगनों का निर्माण किया उसी ने पृथ्वी के भी सात भूवन (लोक) का निर्माण किया ।

विभाग सप्तदश

पृथ्वी का विभाग (किसमती जमीन)

अथ पृथिव्याः विभागनिरूपणं यत्र लोकास्तिष्ठन्ति । तस्याः दार्शनिकै सप्तधा विभागः कृतस्तान् विभागान् सप्त अअक्लिम इति वदन्ति । पौराणिकास्तु सप्त द्वीपानि वदन्ति । एतान् खण्डान् पलाण्डुत्वग्वदुपर्य-धो-भावेन न ज्ञायन्ते, किन्तु निःश्रेणीसोपानवज्जानन्ति । सप्त पर्वतान् सप्त कुलाचलान् वदन्ति, तेषां पर्वतानां नामान्येतानि - प्रथमः सुमेरुर्म-ध्ये, द्वितीयो हिमवान् , तृतीयो हेमकूटः, चतुर्थो निषधः एते सुमेरोरुत्तरतः। माल्यवान् पूर्वस्यां, गन्धमादनः पश्चिमायां कैलासश्च मर्यादापर्वतेभ्योऽतिरिक्तः। यथाऽस्मद्वेदे श्रूयते - "अस्माभिः पर्वताः शंकवः कृताः । एतेषां सप्तद्वीपानां प्रत्येक-मावेष्टनरूपाः ससमुद्राः। लवणो जम्बुद्वीपरस्यावरकः । इक्षुरसः प्लक्षद्वीपस्य, दधिसमुद्रः क्रौञ्चद्वीपस्य, क्षीरसमुद्रः शाकद्वीपस्य, स्वादुजलसमुद्रः पुष्करद्वीपस्यावरकः इति । समुद्राः सप्त अस्मद्वेदेऽपि प्रकटाः भवन्ति । वृक्षा लेखनी भवेयुः समुद्रोऽ पि मसी भवेत् परं भगवद्वाक्यानि समाप्तानि न भवन्ति। प्रतिद्वीपं प्रतिपर्वतं प्रतिसमुद्रं नानाजातयोऽनन्ता जन्तवस्तिष्ठन्ति । या पृथिवी ये पर्वताः ये समुद्राः सर्वाभ्यः पृथिवीभ्यः सर्वेभ्यः पर्वतेभ्यः सर्वेभ्यः समुद्रेभ्य उपरि तिष्ठन्ति तान् 'स्वर्ग' इति वदन्ति । या पृथिवी ये पर्वताः ये समुद्राः सर्वाभ्यः पृथिवीभ्यः सर्वेभ्यः पर्वतेभ्यः सर्वेभ्यः समुद्रेभ्योऽधो भागे तिष्ठन्ति स 'नरक' इति वदन्ति । निश्चतं किल सिद्धैःस्वर्गनरकादिकं

सर्वं ब्रह्माण्डान्न किञ्चिद्बहिरस्तीति। ते सप्तगगनाश्रिताः सप्त ग्रहाः स्वर्गं परितो मेखलावत् परिभ्रमन्तीति वदन्ति; न स्वर्गस्योपरि । अथ स्वर्गस्य यदि मन आकाशं जानन्ति अस्मदीयास्तमर्श इति वदन्ति। स्वर्ग-भूमिं कुर्शीति वदन्ति ।

अव पृथ्वी के विभागों का निरूपण करते हैं - जिस पर लोक निवास करते है उस पृथ्वी के सिद्धों ने सात विभाग किये । इन विभागों को "अकूलीन" (खण्ड या टुकड़ा) कहते हैं । भारतीय पौराणिक इन्हें सात द्वीप कहते हैं । ये खण्ड प्याज के छिलकों की तरह उपर नीचे नहीं हैं किन्तु ये निसेनी के सात सोपानों की तरह माने गये हैं (या निसेनी के रूप में समझे जा सकते हैं) । इनमें अवस्थित सात पर्वत या कुलाचल हैं । जिनके नाम हैं प्रथम सुमेरू, द्वितीय हिमालय, तृतीय हेमकूट तथा चतुर्थ निषध पांचवा नील पर्वत, षष्ठ श्वेताचल तथा सप्तम श्रृङ्गवान् पर्वत हैं । ये तीनों सुमेरू के उत्तर में अवस्थित हैं । इसके अतिरिक्त पूर्व में माल्यवान् तथा पश्चिम में गन्धमादन नामक पर्वत हैं । उत्तर का कैलाश पर्वत इन सात तथा शेष कुलाचलों के अतिरिक्त[१](कुल पर्वत के रूप में) माना जाता है । जैसा कि हमारे वेद में कहा है कि - इसने इन पर्वतों को पृथ्वी के शंकु (कीलों की तरह) वनाये हैं। इन सात द्वीपों में प्रत्येक के आवरण करने वाले सात समुद्र हैं - इनमें क्षार समुद्र जम्वुद्वीप को सुरा (सुरा) समुद्र शाल्मली द्वीप को, घृत-समुद्र कुशद्वीप को, दधि-समुद्र क्रौंचद्वीप को, क्षीर-समुद्र शाकद्वीप को तथा स्वादुसमुद्र पुष्कर द्वीप को आवेष्टित कर अवस्थित हैं । इस प्रकार ये सात समुद्र है जिनका हमारे वेद में कथन है "यदि सातों समुद्रों को (मसी पात्र की) स्याही बनाकर परमेश्वर के गुणों के वाक्यों को लिखा जाए तो ऐसे लेखन कार्य का अन्त नहीं हो पाएगा ।[२] क्योंकि परमेश्वर के गुण अनन्त हैं और वही समस्त गुणों का परिज्ञाता भी है। प्रत्येक द्वीप, प्रत्येक पर्वत तथा प्रत्येक समुद्र में विभिन्न जातियों के असंख्य प्राणियों का निवास हैं । और जितनी पृथ्वी, जितने पर्वत और जितने समुद्र हैं उन सभी के उपर जो लोक स्थित हैं उसे "स्वर्ग-लोक" कहते हैं तथा पृथ्वी, पर्वत एवं समुद्रों के नीचे या अधोभाग में जो लोक स्थित है उसे (पाताल या) "नरक" कहा गया है । सभी सिद्धों के मतानुसार यह निश्चित है कि स्वर्ग या नरक व्रम्हाण्ड के बाहर नहीं है । सातों आकाशों (गगनों) के आश्रित सातों ग्रहण स्वर्ग के चारों ओर आसपास मेला बनाकर भ्रमण करते हैं । ऐसा कहा गया है कि ये स्वर्ग के उपर भ्रमण नहीं करते । यह सिद्ध कहते हैं स्वर्ग के उपर गगन या छत है हमारे मनीषी उस आकाश को "अर्श" और स्वर्ग भूमि को "कुर्शी" या परमेश्वर का सिंहासन कहते हैं ।[३]

---

१. कुलाचल या कुलपर्वत सात पर्वतों की माला है। यह एक वर्ष या द्वीप में होती है। इनके नाम है - महेन्द्र, मलय, सह्य, सुह्य, सुक्तिमत् , ऋक्ष, विन्ध्य, तथा पारियात्र ।

२. तुलना - असित गिरिसमम् , इत्यादि शिवहिम्न-स्तोत्र का पद्य। परमेश्वर अनन्तगुणों वाला है अतः उसके सभी गुणों का वर्णन अशक्य है ।

३. इसका विवरण आकाश के विभाग में वतलाया जा चुका है कि कुर्शी आठवां आसमान है ।

विभाग अष्टादश–

मृतलोक या ख- नामक प्रेत-लोक निरूपण (बरजस)

अथ जगद्वर्ज्य-खपर्याय-प्रेतलोक निरूपणम् -अस्मन्महासिद्धेनाज्ञप्तम् - निश्चयेन खलु यः कश्चिन्मृतः तस्य प्रलयों जातः तदात्मा तत्क्षण एव भौतिकात् स्थूलशरीरात् वियोगं प्राप्य सूक्ष्मशरीरे प्रविशति । तस्य सूक्ष्मशरीस्य कर्मणः उत्पत्तिः तस्य कर्म धर्मोऽधर्मो वा प्रश्नोतरे समाप्ते तत्क्षणं स्वर्गिणं स्वर्गेनयन्ति नारकिणं नरके । अस्मद्वेदकाण्डिकानुसारेण चैतदेवोक्तं यथा 'ते .... अभाग्यवन्तःसन्तोऽग्निमध्य उच्चैराक्रोशन्तः सकरुणं जल्पन्तो नित्यं तत्रैवाग्नौ तिष्ठन्ति तावत् यावत् द्यावाभूमी तिष्ठतः परमेश्वरस्येच्छां विना । निश्चयेन किल तव सर्वं परमेश्वरः करोति तद् यद्यदिच्छसि । ये भाग्यवन्तस्ते स्वर्गे नित्यं तिष्ठन्ति तावद् यावद् द्यावाभूमी तिष्ठतः । विना परमेश्वरस्य तन्निष्कासनेच्छां कृपादानं वा तस्यानन्तं यद् द्यावाभूम्योर्नाशात् पूर्वमपि यदिच्छति सः तदा नरकात् अपि स्वर्गे नयति । एको महापुरुषों एतत्कण्डिकाया अर्थमित्थमकरोत् - एकः समयः एतादृश आगमिष्यति यत्र नारकिणः केऽपि नरके न स्थास्यन्ति । चिरकालं नरकस्थित्यनन्तरं निष्कासनं स्वर्गिणां स्वर्गात् तद् यद् द्यावाभूम्योर्नाशात् पूर्वमपि यदीच्छति स्वर्गात् तदा 'फिरदौसआला' मध्ये नयति, यतः कृपादानं तस्यानन्तम् । यथाऽस्मद्वेदे श्रूयते-यः सर्वेभ्यः स्वर्गेभ्य उत्कृष्टतमः यं च सिद्धाः वैकुण्ठमिति वदन्ति । इयं महामुक्तिः ।

अब हम संसार से बाहर स्थित प्रेतलोक का - जिसे "ख" भी कहा जाता है - निरूपण करते हैं । इस लोक के विषय में हमारे सिद्ध पैगम्बर ने आदेश दिया है कि - यहां संसार में जिसकी भी निश्चय ही मृत्यु हो जाए उसका "प्रलय" हो चुका है ।[1] उसकी आत्मा तत्काल (ऐहिक) भौतिक स्थूलशरीर से छूट कर सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करता है तथा पुण्य या दुष्कर्म के आचरणों के आधार पर यह होती है (ये कर्म या तो धर्म या अधर्म हो सकते हैं ।) इसके

---

१. इस्लाम में पुनर्जन्म नहीं होने से मरण को ही प्रलय कहा गया है ।

उपरान्त उससे प्रश्नोत्तर के समाप्त हो जाने के पश्चात् उनकी पात्रता के अनुरूप न्याय कर उन्हेंतदनुरूप स्वर्ग जाने को कहा जाता है तथा जिनकी योग्यता नरक के उपयुक्त हो तो उन्हें नरक भेज दिया जाता है ।[1] यह वात हमारे वेद की कण्डिका के अनुसार (इस प्रकार) है कि - "वे अभागे हैं जो अपने कर्म या दोषों के आधार पर प्रश्नोत्तर के परिणाम स्वरूप असफलतावश नरक की आग में झोक दिये जाते हैं जहां वे जोरों से चिल्लाकर करुण क्रन्दन करते रहते हैं, और इस प्रकार वे वहां तव तक वने रहते है जव तक यह पृथ्वी और आकाश रहेंगे । परमेश्वर की इच्छा के बिना उनके कर्मो के फल का अन्त नहीं हो सकता या उनकी नरक से मुक्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि तुम जीवों को लिए परमेश्वर ही जो चाहता है वही सब कर सकता है । जो जीव भाग्यशाली है वे सदैव स्वर्ग में निवास करते है जब तक पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष (आकाश) बने है तब तक परमेश्वर उन्हें प्रसन्न होकर अपनी इच्छा से वहीं रख सकता है; तथा उन्हें अन्यत्र भी (किन्ही दिव्य स्थान पर) भेज सकता है क्योंकि परमेश्वर इतने समर्थ हैं कि वे जिस पर प्रसन्न हो जाएं उसे नरक से भी निकाल कर स्वर्ग में ऐसी स्थिति में रख सकते हैं जव तक पृथ्वी और आकाश विद्यमान हो क्योंकि उसका कृपादान अनन्त है । इस्लाम धर्म के एक विचारक सन्त ने इस अनुच्छेद की व्याख्या इस प्रकार भी की है - "एक समय ऐसा आएगा जव वे लोग (जीव) जो नरक में भेजे गये थे, वे नरक में नहीं रहेंगे । चिरकाल तक नरक में रहने के उपरान्त उनका वहां से निष्कासन हो जाता है तथा स्वर्ग में चिरकाल रहने वालों का भी यही निष्कासन (स्वर्य से) देखा जाता है जो अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी के नाश होने के पूर्व ही ईश्वर की इच्छा से स्वर्ग से फिरदोश - आला (परमधाम) में ले जाए जाते हैं; क्योंकि परमेश्वर का कृपादान अनन्त (होता) है और वही सभी को मुक्त करना चाहता है ।" जैसा कि हमारे वेद में कहा गया है कि -"परमेश्वर का निवासभूत एक ऐसा स्वर्ग है जो सभी दिव्यस्थानों से उत्कृष्ट तथा सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित है । आर्य सन्तजन इस स्वर्ग से उत्कृष्ट ऐसे स्थान को "वैकुण्ठ" कहते हैं । यह परम स्थिति "महामुक्ति" कहलाती है ।[2]

विभाग एकोनविंशतितम–

महाप्रलय-निरूपण - (कियामत या)

अथ महाप्रलय-निरूपणम् - सिद्धानामिदं मतं यन्नारकिणां नरके स्वर्गिणां स्वर्गे चिरकालं स्थित्यनन्तरं महा-प्रलयों जायते । शङ्खे ध्माते

---

१. सूक्ष्मशरीर को ही स्वर्ग या नरक अपने पुण्य या पातकों को आधार पर मिलता है, जिसे वे भोगते हैं। यहां कर्मो की परीक्षा या जांच के लिये परमेश्वर का जीव के कर्मगत विषय जानना ही प्रश्नोतर है। जिसे वह फरिश्तों से प्राप्त करता है। ईश्वरीय दूतों को भारतीय वेदान्त में आतिवाहिक देवता माना है जिनके अधीन जीव को कर्मानुसार गति मिलती है ।

२. यह विवरण भारतीय आचार्यो से पूर्ण अनुमोदित तथ्यों वाला नहीं है तथा सर्वमुक्ति या मोक्ष की वात भी यहां साधार नहीं की गई प्रतीत है ।

सति पश्चान्मूर्छन्ति द्युस्थाः भूमिष्ठाश्च सर्वे विना तं यं परमेश्वरो रक्षितुमिच्छति । ते च ज्ञानिन एव ये परमेश्वरेणेहामुत्र च मूर्च्छातः प्रमादाच्च संरक्षिताः । तदुक्तं-वासिष्ठरामायणे

"कल्पान्तवायवो वान्तु यान्तु चैकत्वमर्णवाः ।
तपन्तु द्वादशादित्याः नास्ति निर्मनसः क्षतिः ।।" इति

ततः पश्चान्नाशं प्राप्नुवन्ति दिवः पृथिवी नरकाः स्वर्गाश्च । समाप्ते ब्रह्मण आयूंषि ब्रह्माण्डे चादृश्यत्वं गते सति नारकाणां स्वर्गिणाञ्च विदेहमुक्ति-र्भाविनि । अस्यार्थः उभयेषामपि-शुद्ध-ब्रह्मणि एक्यं (लयो) भवति । उक्तञ्च

"ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे ।
परस्यान्ते कृतात्मानःप्रविशन्ति परं पदम् ।।"

अब महाप्रलय का निरूपण करते हैं । सिद्धों का यह मत है कि नरको के उपयुक्त जीवों को नरको में तथा स्वर्ग के योग्य पुण्यात्मा-जन को स्वर्ग में चिरकाल निवास करने के पश्चात् "महाप्रलय" होता है । जैसा कि हमारे वेद में कहा है - "महाप्रलय के आने के समय (पूर्व में) जोरों से शंख बजने की ध्वनि होने पर स्वर्ग तथा भूमि पर स्थित प्राणी (जीव) मूर्च्छित हो जाएंगे, केवल वे ही इस समय बचे रहेंगे जिन्हें स्वयं परमेश्वर मूर्च्छा से उनकी रक्षा करना चाहेंगे । ऐसे ये जन ज्ञानी होते हैं । जिन्हें परमेश्वर इस लोक तथा परलोक में इस मूर्च्छा एवं प्रमाद से बचाता है । यही वात वासिष्ठरामायण (योगवासिष्ठ) में भी है ।

"चाहें कल्पान्त (प्रलय) के समय चलने वाले तेज आंधियां" चलें और सभी समुद्र एक हो जाएं और बारह सूर्य भी एक साथ प्रकट होकर तपने लगे किन्तु चित्तवृत्तियों को निरूद्ध करने वाले पुरूष की इनसे कोई हानि नही होती (क्योंकि परमेश्वर इनकी रक्षा करता है)" इसके पश्चात् फिर आकाश, पृथ्वी स्वर्ग तथा नरक आदि सभी सृष्टि का नाश हो जाता है। (कल्प की समाप्ति के कारण) ब्रह्मा की आयु के (पूर्ण एवं) समाप्त हो जाने पर ब्रह्माण्ड प्रलय या अद्रश्य हो जाऐगा । और तभी नरक तथा स्वर्ग में स्थित सभी प्राणियों की विदेह-मुक्ति हो जाएगी अर्थात दोनों लोको के इन निवासियों का लय शुद्धब्रहन में एक भाव हो जाने से शेष शुद्ध ब्रहम ही रह जाता है । जैसा कहा भी गया है कि "महाप्रलय के आने पर सभी प्राणियों" तथा मुक्त जीवों' का समूह ब्रम्हा के साथ अन्त में परब्रम्ह के परमपद में लय प्राप्त करते या परमपद में प्रवेश कर जाते हैं ।"

---

१. यह विवरण क्रममुक्ति की व्याख्या कर रहा है । अतः कृतात्मा जन ही परमपद प्राप्त करते है । उपासनादि के द्वारा जिनकी वासना क्षीण हो गयी हो वे परिष्कृतचितवाले जीव ही यहां कृतात्मा है । यदि महाप्रलय में सर्वमुक्ति हो जाती तो भारतीय-दर्शनों के अनुसार मुक्त-जीवों का पुनर्जन्म न होने पर तो कभी नवीन सृष्टि ही नहीं होगी, जो पूर्वापर में मेल नहीं खाता ।

विभाग विशतितम—

मुक्ति-निरूपण

अथ मुक्ति-निरूपणम् - मुक्तिर्नाम शुद्धचैतन्ये परिच्छिन्नानां विलयो विगलनमिति यावत् । यथैत्कण्डिकातः - परमेश्वरात् कुञ्जान् अकब्बरो ऽस्ति स महाफलमिति प्रकटो भवति । प्रवेशनं कुञ्जानअकब्बरे 'फिरदौस-आलापर्याये महामुक्तिः परो मोक्षइत्यर्थ । सा एषा मुक्तिस्त्रि-विधा -प्रथमा जीवन्मुक्तिः । अस्यार्थो जीवदृशायामेव मुक्तिरिति । जीवन्मुक्तिस्तु यः कश्चिज्जीवनदशायां ज्ञान-सम्पत्या सद्गुरु-परिचयेन च मुक्तो भवति । अस्मिन् संसारे सर्व वस्त्वेकं पश्यति एकञ्च जानाति। प्रवृत्तयो निवृतयः शुभा अशुभाश्चैत्येतेषांस्वसम्बन्धं न कुर्वन्ति । स्वस्य सर्वसृष्ट्या सह सत्यस्वरूपतया स जानाति । स सर्वपकाशः सत्यस्वरूप इति जानाति पश्यति व ।

अव हम मुक्ति का निरूपण करते हैं । परिच्छिन्न चेतन (जीवों) का शुद्धचैतन्य (अपरिच्छिन्न चैतन्य) में विगलनरूप विलय हो जाना "मुक्ति" (माना गया) है । जैसा कि हमारे वेद की इस कण्डिका से स्पट है कि - "परमेश्वर से उस महाफल की प्राप्ति हो जाना जिसे "कुज्जानअकव्वर' नाम से भी जाना जाता है जिसका आशय है महामुक्ति (परममोक्ष) या अन्तिम विलय (मोक्ष) है ।

मुक्ति तीन प्रकार की होती है । जिनमें प्रथम मुक्ति "जीवन्मुक्ति" है । जो मुक्ति जगत में विद्यमान जीवितदशा में होती हो वह "जीवनन्मुक्ति" है। ऐसा व्यक्ति या पुरूष जीवन्मुक्त है जो अपनी जीवित दशा में किन्ही सन्तों के संसर्ग या उनके उपदिष्ट आचरणादि से ज्ञान प्राप्ति एवं सत्-तत्व के परिचय हो जाने से मुक्त होकर संसार की सभी वस्तुओं में एक ब्रह्म का दर्शन करता है तथा उसे जानता है । इस कारण प्रवृति तथा निवृति मूलक जो भी आचार या कर्म हैं एवं जिनका शुभ या अशुभ फल या परिणाम होता हो, तो यह इनसे सम्वद्ध नहीं होता और समग्र सृष्टि के साथ वह अपने ही स्वरूपभाव की समता या ज्ञान रखता है । वह ब्रम्ह का ही सर्वत्र प्रकाश तथा उसी के सत्स्वरूप का ज्ञान करता रहता है और उसे ही देखता रहता है ।

---

१. कुज्जान्-अकव्वर - यह अरबी शब्द है। कुज्जान् - शुद्ध या खालिस । अकवर-सवसे विस्तीर्ण या सर्वोतम ।

सर्वस्य ब्रह्माण्डस्यैकात्मवादिनो अमहज्जगद् आहतजगद् इति नाम वदन्ति । तदेव परमेश्वरस्य समष्ठिरूपमस्ति । अथ परमेश्वरस्य स्थूलशरीरस्थानीयं चिदाकाशं परमेश्वरस्य नित्यसूक्ष्मशरीरस्थानीयं शुद्धचैतन्यं तस्य शरीरस्यात्मस्थानीयं व्यक्तिरेकैव जानीयात् । एकमणु एकं तृणं गुप्तं प्रकटश्च तस्मादसदृशद्वैतादतिरिक्तं न पश्येन्न जानीयात् । यथा चैकस्य पुरुषस्यामहज्जगद् वदन्ति स्म परस्परविलक्षणा बहवोऽयवया एकव्यक्तिः, अथ च भिन्ना अवयवा न तु सोऽनेको तथैव तस्य शुद्धचैतन्यस्यापि बहवः परिच्छिन्ना अवयवा परन्त्वनैकं तं न जानीयात् ।

एकात्मवादी जन इस समग्र ब्रम्हाण्ड का "महत्जगत् या आहतजगत' नाम वतलाते हैं । यही ब्रम्ह का समष्टिगत (एकीभूतरूप) माना गया है । अतएव परमेश्वर के इस समष्टिगत स्थूलशरीर के स्थान पर, चिदाकाश उसी के नित्य एवं सूक्ष्म शरीर के स्थान पर "शुद्धचैतन्य" तथा उसी शरीर के आत्मस्थान पर "परब्रम्ह" रहने से समग्ररूप में एक ही ब्रह्म है, भिन्न या अनेक नहीं है; यही समझना चाहिए । तब ऐसा ज्ञान रखने पर वह इस जग में स्थित एक अणु या एक तृण (खण्ड) को भी उस एक मात्र परमेश्वर से भिन्न गुप्त अथवा प्रकट ऐसा नहीं देखता जो असामान्य परमेश्वर से भिन्न रूपवाला हो और न ही जानता है । अतः इस एक पुरूष को "अमहत् जगत् " (सीमित रहने से) कहा गया है क्योंकि वह एक संख्या वाला है जवकि उसका शरीर विलक्षण अनेक अवयवों का संघात है और भिन्नावयवरहने पर भी अनेक नहीं किन्तु एक ही व्यक्ति बना रहता है । इसी प्रकार शुद्धचैतन्य के विभिन्न तथा अनेक अंशभूत जीव रहने पर भी वह अपने स्वरूप में इन जीवों की अनन्तता के रहते हुए भी एक बना रहता है ।

यथैवेको महापुरुषः शुद्धान्तःकरण आज्ञप्तवान् -सत्यस्वरूपं सर्वब्रह्माण्डस्यात्मा सर्वब्रह्माण्डं सत्यस्वरूपस्य शरीरम् , आत्मनो देवताश्वेन्द्रियाणि, तस्य शरीस्य शयनानि भूतानि,स्थावराणि जङ्गमानि च सर्वाण्यवयवाः । ज्ञानमिदमेवान्यद-प्रयोजकम् । अनेनेव प्रकारेण व्यासप्रभृतय सिद्धाः अपि वर्णयन्ति सर्वब्रह्माण्डं महज्जगदेकव्यक्तिं ज्ञात्वा तच्छरीरावयवानेवं वर्णयन्ति । एतदर्थमेकात्मवादी यं यं पश्यति जानातु सः पदार्थो महापुरुषस्य सः सोऽवयवः ।

---

१. यह भी स्थूल तथा परिच्छिन्न जगत् ही प्रतीत होता है ।

२. ये सन्त हैं सूफ़ी रहस्यवादी सन्त तथा लेखक-शेखसादुद्दीन हुए, जिनका मन्तव्य लेखक दारा ने यहाँ दिखलाया है. ।

इस विषय में एक शुद्ध अन्तःकरण वाले सन्त[१] महापुरुष ने उपदेश किया कि सत्यस्वरूप परमेश्वर समग्र ब्रम्हाण्ड की एक आत्मा है और समस्त ब्रम्हाण्ड उस सत्यस्वरूप का शरीर है । आत्माएं, देवगण तथा इन्द्रियां उस ब्रम्ह के आकाश आदि भूत तथा सभी चराचर प्राणी तथा पदार्थ उसके अंग हैं । वास्तव में ऐसा समझना ही सत्यज्ञान है तथा इससे भिन्न सभी निरर्थक है । इसी प्रकार भारतीय ऋषि वेद-व्यास आदि सिद्धों ने इस समस्त ब्रह्माण्ड महाजगत् को एक व्यक्ति मान कर उसके शरीरगत अंगों का वर्णन किया है । इसी कारण एकात्वादी जिस जिस पदार्थ को देखता है सभी को उस विराट् महापुरूष के उन-उन अवयव के रूप में जानने लगता है ।

सप्तमं पातालं महापुरुषस्य चरणतलम् । रसातलं षष्ठं महापुरुषस्य चरणपृष्ठम् पिशाचाद्याः पादाङ्गुल्यः पिशाचानां वाहनरूपाः पशवो महापुरुषस्य नखाः । महातल्लं पञ्चमं पुटं महापुरुषस्य गुल्फौ, तलातलं चतुर्थपुटं महापुरुषस्य जङ्घे, वितीयं पुटं सुतलं महापुरुषस्य जानुनी, वितलं द्वितीयं पुटं महापुरुषस्य उरू, कालो महापुरुषस्य ममनक्रिया । अतलं प्रथमं पुटं महापुरूषस्य पायुः, प्रजापतिर्देवता-संवृत्ता-सन्ताननिमित्तं चिन्हं पुँस्त्वं महापुरुषस्य ।

इस प्रकार इस महापुरुष' के सप्तम अधोलोक पाताल इसके चरण, षृष्ठ रसातल उसका चरण पृष्ठ, पिशाच आदि के वाहन पशु उसके पैरों की अंगुलियों के नख, पाँचवा अधोलोक गत भूमिपुट महातल उसका पाद्गुल्फ (टकनियां) है, चौथा अधोलोकगत भमिपुट तलातल उसकी जंघाएं, तीसरा भूमिपुट सुतल उसकी जानू (घुटने) द्वितीय पुट वितल उसकी उरू एवं काल उसकी गमन क्रिया (चलना) है, प्रथम पुट अतल उसका गुह्यपुलिंग तथा पायु (गुदा) है, जो आच्छादित प्रजापति देवता से अधिष्ठित इन्द्रिय है तथा सन्तति का कारण भूत चिन्ह (शिश्न) है तथा पुँस्त्वभाव भी है।

वृष्टिर्महापुरुषस्य बिन्दुः । पृथिवीमारभ्य गगनपर्यन्तो भागो नाभेरधस्तात् (प्रदेशो) महापुरूषस्य। मेरोर्दक्षिणतः पर्वतत्रयं दक्षिणबाहुरुत्तरतश्च पर्वतत्रयं वामबाहुर्महापुरुषस्य । श्रोणी-सन्ध्ये वाससी महापुरुषस्य । प्रातःसन्ध्या शुक्लप्रकाशः सायंसंध्या पाटलप्रकाशः कौपीनाच्छादको वस्त्रखण्डौ महापुरुषस्य । समुद्रो नाभिर्महापुरुषस्य, वाडवानलः समुद्रस्थो

---

१. यह विराटरूप का विवरण बंडी व्यापक सांमग्री को प्रस्तुत करता है जिसके स्रोत एवं कल्पना विलक्षणता लिए हुए तथा अपूर्व है ।

जलशोंषको महाप्रलयो महापुरुषस्य जठरस्थ उष्मा वस्तुमात्रस्य पाचकः । अन्ये जलाशया नाडय शरीरस्थाः महापुरुषस्य तथा सर्वजलाशयाः समुद्रे यथा मिलन्ति सर्वा नाड्यो नाभौ मिलन्ति । गंङ्गायमुना-सरस्वत्यस्तिस्रो नाड्यस्ताश्च इडा गङ्गा पिङ्गला यमुना सुषुम्ना सरस्वतीति ।

उसी महपुरुष के ये अवयव है-वृष्टि इसका वीज या शुक्र तत्व या विन्दु है । पृथ्वी से लेकर आकाश तक का जगत् का भाग इसका नाभि का अधोभाग (जघन तथा नितम्ब) है, सुमेरू पर्वत से दक्षिणवर्ती तीन पर्वत उसका दक्षिण बाहु तथा उत्तर के तीन पर्वत उसका वाम-वाहु, उसके दोनों श्रोणी प्रदेश की सन्धि वस्रो के दोनों खण्डों के धारण प्रदेश है, प्रातःसन्ध्या का शुद्ध प्रकाश तथा सांध्यसन्ध्या का अरूणप्रकाश श्रोणी (कटि के अधोभाग) है तथा कौपीनभूत (गुप्तांग के) आच्छादक दो वस्र खण्ड हैं । समद्र इसके नाभि तथा समुद्र में स्थित बडवानल (महाप्रलय के समय) उसके जल का शोषक एवं समस्त पदार्थो को पकाने (पचाने) वाला उदरवर्ती जठराग्नि है, अन्य नदी आदि जलाशय इसके शरीर की नाड़ियां है । और ये जलाशय समुद्र में मिलते हैं जैसे शरीर की सभी नाड़ियां नाभि में मिलती है । वैसे ही गंगा, यमुना तथा सरस्वती आदि नदियां इसके नाभि प्रदेश (समुद्र) में मिलती है । ये ही शरीरस्थ नाडियाँ में गंगा इडा नामकनाडी यमुना पिंगला और सरस्वती सुषुम्ना नामक नाड़ी मानी गयी है ।

भूर्लोकोपरि वर्तमानो भुवर्लोको यत्र देवगन्धर्वास्तिष्ठन्ति यतश्च शद्ब उत्पद्यते, तदुदरं महापुरुषस्य। खण्डप्रलयाग्निर्महापुरूषस्थ प्रातर्भक्षणीयभक्षिक क्षुत् । खण्डप्रलये जलानां नाशो महापुरुषस्य जलपानं पिपासा च । भुवर्लोकोपरि वर्तमान : स्वर्गलोकः। स्वर्गस्य पुटानामेक पुटो महापुरुषस्य वक्षःस्थलं, नित्यं सुखोत्सवशान्तयस्तत्र। सर्वाणि नक्षत्राणि मणिमुक्ताहारो महापुरुषस्य। अयाचित-दानधर्मो दक्षिण-स्तनो महापुरुषस्य, याचितदान धर्मो वाम-स्तनो महापुरुषस्य । साम्यं त्रिगुणानां सत्वरजस्तमोरूपाणां प्रकृतिरित्युच्यते तन्महापुरूषस्य मनो यतः कमलमपि त्रिरूपं श्वेतं रक्तं श्यामञ्चा । मनोऽपि कमलाकारं त्रिगुणम् । ब्रह्मा मनोधाम धारयति महापुरुषस्य । मनस्यश्चेष्टा भवति विष्णुर्दया स्नेहश्च महापुरूषस्य । महेशः क्रोधोध्मातो महापुरुषस्य । चन्द्रो हासः प्रसादश्च महापुरुषस्य ।

शोकदुःखोष्मनिवारकत्वात् वसिष्ठो ज्ञानं महापुरुषस्य, वायुः प्राणो महापुरुषस्य,-असाधुकर्माधर्मश्च पृष्ठं महापुरुषस्य, मेरुः पृष्ठदण्डो महापुरुषस्य । अन्ये पर्वताः सुमेरोर्दक्षिणोत्तराः पार्श्वे दक्षिणोत्तरे महायुरुषस्य। अष्टौ देवा ष्लोकपालास्त्रेषामिन्द्रः श्रेष्ठोऽश्रेष्ठोऽत्यन्तसमर्थो दाता वर्षुकोऽदाताऽवर्षुकश्च महापुरुषस्य हस्तद्वयम् । दक्षिणहस्तो दाता वर्षुकश्च । अप्सरसः कररेखा महापुरुषस्य, धनाधिष्ठातारो देवा महापुरुषस्य कराङ्गुल्यः। यक्षा नखाः महापुरुषस्य। त्रयो देवा लोकपाला दक्षिणहस्तो महापुरुषस्य तत्राग्निनामा, देवः प्रकोष्ठः। यमनामा देवः कूपरः निर्ऋतिनामा देवः प्रगण्डः। लोकपालास्त्रयो देवा वामबाहुर्महापुरुषस्य । तत्रेशानो वामप्रकोष्ठः, कुवेरो वामकूर्परः वायुर्वामप्रगण्डः । कल्पवृक्षो दानं महापुरुषस्य । दक्षिणोत्तरधुवौ दक्षिणेत्तरा वंसौ महापुरुषस्य । कलाधिष्ठाता पश्चिमदिक्स्थो वरुणः ककुभ् महापुरुषस्य ।

भूलोक के ऊपर अवस्थित भुवर्लोक है जहां देवगण एवं गन्धर्वों का निवास है तथा जहां से शद्व उत्पन्न होता है । वह इस महापुरूष का उदर प्रदेश है । खण्डप्रलय की अग्नि इसकी प्रातः अशनीय क्षुधा है तथा इस खण्डप्रलयाग्नि द्वारा जल का शोषण या ग्रहण करना उस महापुरूष का जलपान तथा तृषा है । इस भुवर्लोक के ऊपर स्थित स्वर्लोक है जो स्वर्ग के पुटों में एक है वह इस महपुरुष का वक्षःस्थल है जहाँ नित्य सु-उत्सव तथा शान्ति निवास करते है । सभी नक्षत्रगण इसके हार की गुणियां एवं मुक्ताहार है । अयाचित दान तथा धर्म इसका दाहिना स्तन या वक्षःप्रदेश है और याचित दान तथा धर्म इसका दाहिना स्तन वक्षःप्रदेश है । सत्व रज एवं तमोगुण की साम्यावस्था वाली जो प्रकृति है वह इसका मन या अन्तरिन्द्रिय है, क्योंकि मन भी कमलदल के आकार वाला श्वेत, रक्त नील वर्ण वाला होता है तथा त्रिगुण माना जाता है, अतः वह ब्रह्मा का नाम धारण करता है । उसकी चेष्टाएं या क्रियाएं जो दया एवं स्नेह मयी है वे विष्णु रूप है और इसके क्रोध एवं संहारकार्य रूद्ररूप होकर इस महापुरूष में स्थित है । चन्द्र इसका हास और प्रसन्नता है, शोक, दुःख एवं उष्मा का निवारण करने वाले वशिष्ठ ऋषि इस महापुरूष का ज्ञान होकर स्थित है, वायु इसका प्राण तथा असाधुकर्म तथा साधुकर्म इसके (वाम एवं दक्षिण) पृष्ठभाग हैं, सुमेरु पृष्ठदण्ड, सुमेरु के दक्षिणोत्तरवर्ती पर्वत इसके दक्षिण तथा वाम पार्श्व (वाजू) है, आठों लोकपालों के अधिपति इन्द्रदेव जो श्रेष्ठ एवं सामर्थ्यशाली

है वे दाता एवं वर्षुक तथा अदाता एवं अवर्षुक रूप में इसके दक्षिण एवं वाम हस्त है । जिनमें दक्षिणहस्त दाता एवं वर्षक तथा वाम अदाता एवं अवर्षक है । स्वर्गस्थ अप्सराएं इसके हाथ की रेखाएं, वनाधिपति एवं उसके प्रदाता देवगण हाथों की उंगलियां, यक्षगण हाथों के (अंगुलियों के) नख, तीनों लोकपाल इसके दक्षिणहस्त तथा इनमें जो अग्नि है वह इसका प्रकोष्ठ (कलाई), यम देव इसकी कोहनी (कर्पूर) और निर्ऋति देव इसकी कोइनी के ऊपर का भाग (प्रगण्ड) है । अन्य तीनलोकपाल देव इसके वाम बाहु है जिनमें ईशान-देव वायां प्रकोष्ठ, कुबेर वायां कूर्पर तथा वायुदेव वायां प्रगण्ड है । कल्पवृक्ष इसका दान रूप दक्षिण तथा उत्तर के ध्रुव इसके दोनों कन्धें है, तथा जल के अधिपति पश्चिम दिशा के दिवपाल वरुणदेव इसके कन्धों पर हिलने वाले केश (का कुल) है ।

महर्लोकः स्वर्गलोकोपरि विद्यमानः ग्रीवा गलश्च महा०, अनाहतनादश्चक्रवर्ती शद्बा महा०, जनलोकोः महर्लोकोपरि-विद्यमानः शोभमानं मुखं महा०, जगतामिच्छा चिबुकं महा०, जगद्वर्तिनो लोभा अधरोष्ठो महापुरुषस्य ।. लज्जोत्तरोष्ठो महापुरुषस्य । स्नेहा दन्ताः महापुरुषस्य । सर्वलोकभक्ष्यं भक्ष्यं महापुरुषस्य । सर्वजलं गलरन्ध्रं महापुरुषस्य । अग्निर्जिह्वा महापुरुषस्य । सरस्वती वाक्शक्तिर्महा; वेदाः सत्यवचंन महा०, सृष्टिकरी माया लीलांहास्यं महापुरुषस्य । अष्टौ दिशः कर्णौं महापुरुषस्य । अश्विनीकुमारौ सुन्दरौ देवौ नासापुटे महापुरुषस्य । गन्धतन्मात्रा घ्राणेन्द्रियं महापुरुषस्य । वायुगतिर्निश्वसितं महापुरुषस्य । जनलोक-तपोलोकयोः स्वर्गस्य पञ्चम-षष्ठपुटयोः प्रकाशेन परिपूर्णमन्तरालं तस्य दक्षिणो भागो दक्षिणमक्षि वामभागो वाममक्षि महापुरुषस्य ।

स्वर्गलोक के ऊपर स्थित महर्लोक इसके कण्ठ तथा हलक और अनाहत नाद ओम इसका श्रेष्ठ शद्ब या ध्वनि है । महर्लोक के ऊपर स्थित जनलोक इसका शोभाशाली मुख है, संसांरवर्तीजन की इच्छाएं इसका चिवुक (ठिड्डी) है, संसारवर्तीजन का लोभ इसका अधरोष्ठ एवं लज्जा उत्तरोष्ठ है, सांसारिक स्नेह इसके दांत तथा सभी लोगों का भक्ष्य इसका भोज्य है, सर्वजन के पीने का जल गलरन्ध्र, अग्नि इसकी जिव्हा, सरस्वती इसकी वाक्शक्ति, सत्यवचन,[1] सृष्टि की निर्माण करने वाली माया इसका लीलाहास, आठों दिशाएं इसके दोनों कान,

---

१. सत्यवचन, सृष्टि की निर्मात्री माया आदि का यह विवरण फारसी के पाठ में नहीं मिलता । यह केवल संस्कृत पाठ में विस्तार से जोडा गया प्रतीत होता है ।

अश्विनीकुमार नामक सुन्दर दो देव इसकी नासिका के रन्ध्र, गन्धतन्मात्रा इसकी घ्राणेन्द्रिय, वायु की गति निश्वास है जनलोक तथा तपोलोक का मध्यवर्ती परिपूर्ण अन्तराल जो प्रकाश से पूर्ण है-वह इसका दक्षिणबाजू, दक्षिण नेत्र तथा वाम भाग बायां नेत्र है

मुख्यप्रकाशमनादिसूर्यं वदन्ति स दृष्टिशक्तिर्महापुरूषस्य। अहोरात्राणि जगतो निमेषोन्मेषौ महापुरुषस्य सर्वजगत्सृष्टिः सुकक्षो महा०, मित्रनामादेवोऽधिष्ठाता स्नेहस्य, त्वष्टादेवोऽधिष्ठाता क्रोधस्य भ्रुवौ महापुरुषस्य। जनलोकोपरि विद्यमानस्तपोलोको ललाटो महापुरुषस्य। सत्यलोको सर्वलोकोपरि विद्यमानो मूर्च्छा महापुरूषस्य । उपनिषदो ब्रह्मरन्ध्रं महापुरुषस्य । महाप्रलयकालीनमेघाः केशाः महापुरुषस्य । तृणलतागुल्मादिकं लोमानि महापुरुषस्य । जगतो लक्ष्मीः सौन्दर्य महापुरुषस्य। सूर्य प्रतापः स्वच्छ त्वं महापुरुषस्य। भूताकाशं रोमकूपा महापुरुषस्य। चिदाकाश ईदृश शरीरस्यात्मा महापुरुषस्य। मनुष्य-शरीराकृतयो गृहं महापुरुषस्य। ज्ञानिनः सौधस्थानं रहःस्थानञ्च महापुरुषस्य। यथा दावूदं प्रत्याज्ञप्तवान् -'हे दाउद, मदर्थं गृहं सज्जं कुरु। स चोक्तवान् शुद्धस्य निराश्रयस्य भवतः कां गृहापेक्षेति। पुनराज्ञप्तवान् -शुद्धत्वमेव मम गृहं ततो मदतिरिक्तं दूरीकृत्य हृदयं रिक्तं सम्पादयेति।'' यथा किलास्मिन् महाब्रह्माण्डे नाना पदार्थास्तथा तत्प्रतिकृतिरूपे शरीरब्रह्माण्डेऽपि सन्ति परन्तु ते सर्वेऽपि परस्परसम्बद्धाः। य इत्थं महापुरुषस्य विराट् रूपं वेत्ति सः जीवन्मुक्तः।

इयं तस्य प्रशंसाऽस्मद्वेदे श्रूयते-'सर्वथा परमेश्वर-कृपादानेन सन्तुष्टः यः स जीवन्मुक्त इति।

अनादि सूर्य कहा जाने वाला मुख्य-प्रकाश इसकी दृष्टि शक्ति है, जगत् के (जो) दिन रात हैं वे इसके निमेष (पलक गिरना) तथा उन्मेष (पलग उठाना है) है, समग्र जगत् की सृष्टि इसका शुभकारी सुन्दर कटाक्ष है, मित्र नामक देव स्नेह के अधिष्ठाता महपुरुष की दोनों भोहैं हैं। जनलोक के ऊपर अवस्थित तपोलोक उसका ललाट तथा सभी लोको के ऊपर विद्यमान सत्यलोक उसका मस्तक प्रदेश है। सभी उपनिषद इसके ब्रहरन्ध्र स्थानीय है तथा महाप्रलयकालीन मेघ उसके केश है, जगत् के द्रुम, लता एवं गुल्म उसके रोएँ (रोम) हैं, जगत् की महालक्ष्मी इसकी सुन्दरता (शोभा) है, सूर्य इसका प्रताप एवं निर्ममता है, भूताकाश इसका

रोमंकूप है, चिदाकाश उसके शरीर में आत्मस्थानीय है, मानवशरीर की (विविध) आकृतियां इसका निवास गृह है, ज्ञानीजन उसके रहने के महल तथा रहस्यस्थान है । इसी बात को परमेश्वर ने (उदाहरणार्थ) ध्यान में रखकर दाऊद को आज्ञा दी-हे दाऊद, मेरे लिए (रहने को) एक घर सुसज्जित कर । उसने उत्तर दिया-आप शुद्धरूप तथा निराश्रय हैं अतः आपको घर की क्या अपेक्षा है ? यह सुन परमेश्वर ने पुनः आज्ञा दी-तुम अकेले ही मेरे घर हो । अतएव मेरे अतिरिक्त इसमें अवस्थित अन्य सभी वस्तुओं को हटाकर हृदय को खाली कर दो ।

जैसे इस भौतिक महाब्रह्माण्ड में नाना पदार्थ है वैसी ही उनकी प्रतिकृति वाले पदार्थ परमेश्वर के प्रकृतिरूप शरीर ब्रह्माण्ड में हैं परन्तु (यहां) ये सभी परस्पर सम्बद्ध हैं अतः जो इस प्रकार वर्णित इस महापुरुष के स्वरूप को देखता या जानता है वह "जीवनन्मुक्त" है । हमारे वेद में भी ऐसे "जीवन्मुक्त"' की प्रशंसा तथा वर्णन आया है कि "जो परमेश्वर की कृपा से प्राप्त या दिये गये पदार्थ से सन्तुष्ट हो वह "जीवन्मुक्त" है ।

द्वितीया सर्वमुक्तिः-एतां विदेहमुक्तिम् वदन्ति । सर्वेषां मोक्ष इत्यर्थः। चित्तस्वरूपे लीनता मोक्ष इति । इयं मुक्तिः सर्वजीवानां साधारणी । महाप्रलये नश्यत्सु मूर्लोकस्वर्गनरकेषु-विलीने समाप्ते ब्रह्मादिवसे च जीवाः सर्वे चित्तस्वरूपे लीयमानाः मुक्ताः भवन्ति। अस्मद्वेद्वे श्रूयते-"परमेश्वरस्यैको महान् वैकुण्ठोऽस्ति यत्र गते सति महामुक्तिर्भवति । तत्र न भयं न शोक इति ।" अनया श्रुत्येयं मुक्तिरेव प्रतिपादिता ।

मुक्ति का द्वितीय भेद "सर्वमुक्ति" है जिसे विदेहमुक्ति' कहते हैं, जहां सभी प्राणियों की एक साथ मुक्ति हो जाती है क्योंकि चित्तस्वरूप में लीन होना मुक्ति है । (यह) सभी जीवों की साधारण या सामान्य रूप से होने वाली मुक्ति है । महाप्रलय के समय भूलोक, स्वर्ग तथा नरक के ब्रंह्माण्ड में विलय हो जाने पर तथा ब्रह्माण्ड एवं ब्रह्मा के दिन के समाप्त हो जाने पर सभी जीव परमचित् स्वरूप में लीन होकर मुक्त हो जाते है (यही सर्वमुक्ति है)। जैसा कि हमारे वेद में आता है कि-"परमेश्वर का एक महान् वैकुण्ठ नामक स्थान है जहां जाने वाले जीवों की महामुक्ति हो जाती है । उन्हें भय और शोक नहीं होता ।"इस प्रकार इस कण्डिका के द्वारा भी "सर्वमुक्ति" के स्वरूप का ही निदर्शन किया गया है ।

तृतीया मुक्तिः सर्वदामुक्तिर्नित्यं मुक्तिरित्यर्थः । सा च यत्र यत्र सञ्चरति ब्रह्मणो दिने रात्रौ वा प्रकटे जगति गुप्ते वा ब्रह्माण्डे आविर्भवति

---

१. विदेहमुक्ति सर्वमुक्ति नहीं परन्तु कर्मक्षीण होने पर एक जीव की मुक्ति विहित होती है जो ज्ञानयोगिजन की ही होती है । पुनर्जन्म के स्वीकार न करने की बुद्धि से ऐसा दारा ने लिखा है । (द्रष्टव्य-मुण्डक ३/२/५ तथा पञ्चदर्शी-५।२१०)

लीने वा भूते भविष्यति वर्तमाने काले वा तत्र तत्र मुक्त एव तिष्ठति। यथास्मद्वेद्वे श्रुतं--"नित्यं तन्मध्ये तिष्ठतीति तत्रापि तन्मध्ये इति पदेन ज्ञानरूपः स्वर्ग एवोक्तो नित्यपदेनेयं मुक़्तिरूक्ता, किन्ञ्च यत्र यत्र तिष्ठति तत्र तत्र ज्ञानयोगसामर्थ्यवान् परमेश्वरप्रसादवाँश्च तिष्ठति। एतत्कण्डिकाद्वय एतादृशस्यैव प्रशंसोक्ता। प्रियोदन्तं ददाति बैकुण्ठस्य स्वर्गिणान्ञ्च तेषां तिष्ठन्ति स्वर्गेषु बैकुण्ठे। किं तत् सर्वा· नित्यसम्पत् -अथ च नित्यमुक्तिः। निश्चयोऽयं परमेश्वरनिकटे महाफलं तिष्ठति। द्वितीयकण्डिकेयं पुनरुदन्तं ददाति श्रद्धावतां धार्मिकाणाम्। तस्य धर्मस्य फलं सत्यज्ञानप्राप्तिः। निश्चयेन ज्ञानिनां सम्यक् फलमप्यस्ति तत् क़िं बैकुण्ठः। नित्यं स्थातारो वैकुण्ठे यत्रेति।

मुक्ति का तृतीय प्रभेद सर्वदामुक्ति या नित्यमुक्ति है। इस मुक्ति को प्राप्त करने वाला प्राणी जहां संचार करता है वह चाहे ब्रह्माण्ड के दिन या रात्रि में हो, जगत् की गुप्त तथा प्रकट स्थिति में हो-आविर्भाव होने या तिरोभावःहोने पर, भूंत भविष्यत् या वर्तमान काल में हो या परमेश्वर में भी जीवों के लय हो जाने पर भी ही यह प्राणी ऐसी सभी स्थितियों से अप्रभावित रह कर मुक्तरूप सर्वदा विचरण करता रहता है।

इस विषय पर हमारे वेद में भी इस प्रकार बतलाया गया है "यह जीव सदा सर्वदा नित्य इन सभी के मध्य स्थित रहता है"। यहां इन सभी के मध्य" (जन्नत) पद से ज्ञानरूप स्वर्ग को ही कहा गया है तथा सदा सर्वदा (या नित्य) पद से सर्वदा मुक्ति को दिखलाया गया है। अतएव ऐसा मुक्त जीवं जहां कही भी अवस्थित रहता है वहां अपने ज्ञानयोग के सामर्थ्य से तथा परमेश्वर की अनुग्रहपूर्ण स्थिति रहने से "मुक्तदशा में रहता है। इस प्रकार इन दो कण्डिकाओं (अनुच्छेदों) में मुक्तात्मा की ही प्रशंसा की गयी है कि -"परमेश्वर इन जीवों को अपनी विशेष कृपा या करूणा के कारण प्रिय परमामोद प्रदान करता है"। परमेश्वर उन्हें अपने वैकुण्ठ-धाम में रखते हुए या अपने स्वर्गो में विचरण करने पर सभी प्रकार की प्रियता या परमामोद को प्रदान करता रहता है। अतः ऐसे जीव स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ में सदा निवास करते है और यही पर वे नित्यसम्पत्-सम्पन्न-नित्यमुक्ति को प्राप्त कर स्थित रहते हैं। और एक अन्य स्थान पर यह भी कहा गया है कि -"वह परमेश्वर ऐसे श्रद्धावान् एवं स्वधर्म को श्रद्धा एवं निष्ठा से पालन करने वालों को जिन्हें स्वधर्माचरण से सद्ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है उन्हें कर्मानुरूप यह मुक्ति प्रदान करता है तथा इस प्रकार वे वैकुण्ठ या स्वर्गो में निवास एवं विच (ह) रण करते रहेंगे। यही उत्तम फल प्राप्ति है और वे वैकुण्ठ में सदास्थितं है ही।[1]

---

१. दारा का मुक्ति के तीन प्रभेद आदि का जिस तरह विवरण रखा गया या जो बातें कहीं गयीं वे भारतीय दर्शनों के तथ्यों तथा विवरणों के आधार पर नहीं बनती है। कदाचित् यही इसकी विलक्षणता उसने मान ली होगी।

एकविंश विभाग-

ब्रह्मा के अहोरात्र गुप्तता एवं प्रकटता --(इजवाशव)

अथाहोरात्रस्य ब्रह्मणो गुप्तप्रकटतारूपस्य निरूपणम् -पौराणिकानां मते ब्रह्मणो जिबराईलपदाभिधेयस्य ब्रह्माण्डनाशस्य परब्रह्मणः प्रकट दिनसमाप्तेश्चाष्टादशाब्जपरिमितानि मनुष्यवर्षाणि। एकैकमब्जं कोटिशतंस्य वदन्ति । अयमर्थोऽस्मद्वेद-कण्डिकाद्वयानुसारी । तत्रैका निश्चयेन ब्रह्मणा निकटे एकं दिनमस्ति। अत्रत्य-गणनया सहस्रवर्षपरिमितं भवति। द्वितीयकण्डिका पुनः तन्निकटे गच्छन्ति देवताआत्मा च । आत्मा च जिबारईल पदाभिधेयः । जिबरईलो ब्रह्मा यस्मिन् दिवसे तस्य मानं पञ्चाशत्-सहस्र-वर्ष-परिमितम् , येषां वर्षाणामेकैकं दिनं प्रसिद्धवर्षपरिमितम् ,सहस्रवर्षस्य प्रथमकडिकायां प्रसङ्गो जातः । एवं शतवर्षपरिमितमायुषः परिमाणं जिबरईलस्य तथा प्रकटदिनस्य परिमाणं जगत्पदवाच्य-ब्रह्माण्डसमाप्तेः परिमाणमैतेषां गणनां कुर्मः ।

अत्रत्यलोकगणनयाऽष्टादशाब्जानि भवन्ति, एकमब्जं कोटिशतस्य भवति । न्यून-विषमतां विनाऽनुसारिणीयं गणसिद्धगणनया भवति । अष्टादशत्वनियम एतदर्थं गणितमर्यादा सिद्धानां निकटे अष्टादशसु परिच्छिन्ना; अष्टादशोत्तरे गणितमर्यादाया अभावात् ।

अब हम ब्रह्मा के दिन तथा रात्रि का निरूपण करते हैं जिसमें वह सृष्टि का निर्माण कर उसमें गुप्त एवं प्रकट भाव में स्थित रहता है । पौराणिकों के अनुसार ब्रह्मा का जिबरैल नाम है । इसके नाश के (नियत) समय ब्रह्मा के प्रकट दिन के समाप्त होनें पर महाप्रलय के रूप में होता है । यह एक दिन मनुष्यों के अठारह-अब्ज वर्षों के बराबर परिमाण वाला माना जाता है तथा एक अब्ज सौ करोड़ वर्षो का होता है । यह बात हमारे वेद की दो कण्डिकाओं के अनुसार कही गयी है जिनमें प्रथम में कहा है "हमारी वर्षो की गणना के अनुसार ब्रह्मा का एक दिन जो है वह यहां की वर्षो की गणना के अनुसार एक हजार वर्षो के बराबर होता है "दूसरी कण्ठिका में कहा है कि --"उसके समीप ही दिव्य देवगण तथा आत्मा आकर अवस्थित रहते है ।" यहाँ आत्मापद से ब्रह्मा या जिबरैल तथा दिन पद से उसका प्रमाण पचास हजार वर्ष का होता है जिनके वर्षो का एक एक दिन भूमण्डल में चलने वाले मनुष्यो के वर्ष के

परिमाण वाला होता है । उसके ''सहस्त्रवर्षो का प्रसंग'' प्रथम कण्डिका में हुआ है । अतएव ऐसे सौ वर्षो का जीवन काल जबरैल का है । इसी के जीवन परिणाम की गणना है । जो मानवीय वर्षो के अठारह अब्जो के बराबर है तथा एक अब्ज (भी) सौ करोड़ का होता है । इस गणना में न तो कम, न विषम या अधिक की स्थिति मानी गयी है । यह गणना भारतीय ऋषि कि मान्यता के अनुसार है । यहां अठारह संख्या भी उन्हीं के अनुसार है क्योंकि उनकी मान्यता है की अठारह अब्ज संख्या गणना की अन्तिम सीमा है जिसके आगे गणना की स्थिति नहीं बनती (या सम्भव नहीं) है ।

एतत्मध्ये भूतानां प्रलयो भविष्यति । तं च खण्डप्रलयः 'कयामते-सुवराऽपरपर्याया उच्यन्ते । यथा जलप्रलयो वह्निप्रलयो वायुप्रलयो चैतस्य दिनस्य समासौ रात्रौ जायमानायां 'कमायत-कुवरा' भवति । यं 'महाप्रलय इति वदन्ति । कण्डिकाद्वयस्येयमाज्ञा । तंत्रैकस्य इयमाज्ञा-तस्मिन् दिवसे वेष्टनं करिष्यामि गगनानां पत्रवेष्टनवत् ।

प्रलय के विषय में यह कि ये इस समय के बीच हुए या होने वाले होते हैं । इनमें खण्डप्रलय को ''कयामते-सुगरा ''कहते है । ये जलप्रलय, अग्निप्रलय या वायुप्रलय के रूप से घटित होते है । इस प्रकार जव दिन समाप्त होकर रात्रि का आरम्भ होता है तव ''महाप्रलय'' होता है जिसे ''कायामतें-कुवरा'' कहते हैं ।

इसे हमारे वेद में दो कण्डिकाओं में बतलाया है । इनमें प्रथम में कहा है उस (महा प्रलय के) दिन मैं आकाशां को पत्तों के आवरण की तरह लपेट (कर रख) दूंगा । तथा दूसरी में कहा है कि - ''महाप्रलय के बाद भविष्य मे भी इसी प्रकार की अन्य पृथ्वी का मैं निर्माण करूंगा ।

द्वितीयकण्डिकाया इयमाज्ञा भविष्यति एतस्याः पृथिव्याः प्रतिनिरूपाऽपरा पृथ्वी प्रकटा भविष्यति । महाप्रलयोत्तरं गुप्तंरात्रौ प्रकटदिनसमापनपरिमाणायां परिच्छिन्नं सर्वं वस्तु शुद्धचैतन्ये लीनं भवति, रांत्रेरपि मानमत्रत्यवर्षगणनयाऽष्टादशाब्जसंख्यानि वर्षाणि भवन्ति । इदं रात्रेः परिमाणं शुद्धचैतन्यस्य सुषुप्तिः सृष्टेर्जगत्प्रकटीकरणात् विश्राम्यति । एतत्कण्डिकायां व्यक्तेयं सुषुप्तिः । तस्याश्च कण्डिकाया अयमर्थः-शीघ्रमेव विश्रामं कुर्मो भवद्भ्यः । हे देवयोनयो मनुष्याश्च, यावद्दिवसेषु जगत् प्रकटं तावच्छुद्धचैतन्यस्य जाग्रदवस्थास्थानम् । महाप्रलयः

सुषुप्त्यवस्थास्थानम् । यदाह –

"निःश्वसितमस्य वेदाः वीक्षितमेतस्य पञ्चभूतानि ।
स्थितमेतस्य चराचरमस्य च सुप्तं महाप्रलयः ।। इति
(वाच० भामती-प्रारम्भ पद्य ३)

महाप्रलय के बाद आनेवाली रात्रि का आरम्भ होगा तो इस रात्रि का भी दिन के समान ही परिमाण होगा । तब समस्त परिच्छिन्न-वस्तुएं शुद्धचैतन्य में लीन हो जाती हैं । ऐसी यह गुप्त रात्रि भी वर्षगणना के अनुरूप पूर्ववत् अठारह अब्ज वर्षों की होती है । इस रात्रि की कालावधि में शुद्धचैतन्य (परमेश्वर) की सुषुप्ति या सोने का समय है जो कि उसका जगत् सृष्टि के प्रकटीकरण से विश्राम लेना है । अगली (दूसरी) कण्डिका में (परमेश्वर) के इस विश्राम को दिखलाया है - "हे दिव्यगण तथा मनुष्यों अब इस रात्रि के आने पर हम विश्राम करेगें । मैं आप सभी से भी विश्राम लेता हूं ।" इस प्रकार जितने समय तक यह ब्रह्माण्ड या जगत् प्रकट रहता है तब तक शुद्धचैतन्य की जागृत अवस्था में अवस्थित रहती है, खण्डप्रलय उसकी रचनावस्था की स्थिति तथा सुषुप्तिदशा महाप्रलय की स्थिति होती है। जैसा कि कहा गया है "इस परब्रह्म के वेद निःश्वास है, पञ्चभूत इसका अवलोकन हैं चराचर विश्व इसकी स्मितरूप उठने आदि की क्रियामय स्थिति है तथा सुषुप्ति महाप्रलय है ।[1]

हे सुहृत्तम, अस्मिन् निरूपणे यद्विलिखितं सूक्ष्मदृष्ट्या नैकधा निश्चितं तत् स्वानुभवानुसारि । अनुभवश्चैतत्कण्डिकाद्वयानुसारी ज्ञातः यो कुत्रापि ग्रन्थे न दृष्टो न वा श्रुतः कुतश्चित् । यद्ययमर्थोऽपरिपूर्णमतीनां श्रुतिकटुस्तदाऽस्माकं न काऽपि क्षतिः । परमेश्वरोऽवाप्तकामो जगतः ।

अतएव हे मेरे परममित्र, इस प्रकरण में जो मैंने लिखा है वह मेरी सूक्ष्म दृष्टि से बार-बार किये गये गहरे चिन्तन द्वारा निश्चित कर तथा निरूपण कर अपने अनुभव के आधार पर प्रस्तुत किया गया है । उपर्युक्त दो कण्डिकाओं में कथित बात का भी अनुभव प्राप्त हुआ जो न तो किसी ग्रन्थ में देखा न सुना था । अतएव यदि यह बात किन्हीं अपरिपक्वमतिवाले अन्यजन को सुनने या विचारने में कडवी लगे या असम्मत हो तो इससे हमारी कोई हानि नहीं होती क्योंकि सांसारिक किसी भी अपेक्षा की पूर्ति करने में अकेला ईश्वर ही पर्याप्त होता है ।

विभाग द्वाविंश

ब्रह्माण्ड़ों के प्रवाह की अनन्ता या शाश्वतक्रम (अडवार)का निरूपण

अथ ब्रह्माण्डप्रवाहानन्त्यनिरूपणम - निश्चेतारः शास्त्रज्ञाः, सत्यस्वरूपस्य नैकेवेयं रात्रिः न चैकं दिनं किन्तु एतद्रात्रिसमाप्तौ पुना रात्रिरायास्यति।

---

१. यहां दारा ने वाचस्पति-मिश्र को ब्रह्मसूत्र के भामती व्याख्या का अंश उद्धृत कर ब्रह्म की व्यापकता को निदर्शित किया है ।

अनेन प्रकारेणानन्त्यम् । एतस्यानादिप्रवाह इति नाम वदन्ति । अस्माकं ज्ञानकविना व्यञ्जनयाऽयमनन्तप्रवाह उक्तः । वृतान्तस्य मम प्रियतमस्य चान्तो नास्ति। यद् वस्त्वादिरहितं तदन्तवदपि न भवति। यत् किञ्चिद् वस्तु जातं विशेषतः प्रकटं गुप्तञ्चि पूर्वं दिवारात्रौ स्थितं तदेव विना न्यूनविषमतायामन्यस्मिन्नहोरात्रे पुनराविर्भवति तिरोभवति च। यथाऽस्मद्वेदे श्रूयते यथा प्रकटीकृताः पूर्व सर्ववस्तुसृष्टयः पुनरपि तथैव ताः प्रकटसृष्टिः करिष्यामि याः सृष्टयो नष्टाः आसन् पश्चात् समाप्ते ब्रह्माण्डे मनौ च यथा पूर्वं स्थिता तथैव तत्वस्वरूपेण पुनराविर्भविष्यति। सर्वदेवैवं प्रकारेण सृक्ष्यामि ।

अब हम इस बह्माण्ड की नैरन्तर्यस्थिति या अनन्तता का निरूपण करते हैं । अर्थों के विज्ञाता एवं उनका विनिश्चय करने वाले शास्त्रों ने कहा है कि (परमेश्वर की पूर्वकथित) ऐसी एक रात्रि या एक दिन केवल एक बार ही नहीं आते किन्तु जब एक रात्रि का अवसान होगा तो इसके बाद पुनः दिनान्त के वाद क्रमानुसार दूसरी रात्रि भी आ जाएगी तथा इस प्रकार एक अन्तहीन क्रम चलता रहेगा जिसे "अनादिप्रवाह"[1] कहा गया है ।

हमारे एक महान् ज्ञान-कवि ने इस तथ्य की व्यञ्जना करते हुए इस अनन्तप्रवाह का कथन किया कि - "मेरी इस प्रियकथा (वृतान्त) का कोई अन्त नहीं और न मेरे प्रिय या इष्ट का कोई अन्त है । क्योंकि जिसका आरम्भ ज्ञात न हो उसका अन्त भी ज्ञात नहीं है । पहले दिन तथा रात्रि में जो वस्तुसमूह विशेषरूप से प्रकट या गुप्त रही थी वे सभी विना किसी कमोवेशी के आने वाले दूसरे दिन एवं रात्रि में भी इसी तरह आविर्भूत या उत्पन्न होगीं तथा बाद में समाप्त हो जाएंगी । जैसा कि हमारे वेद में कहा है - "जिस प्रकार पहिले सभी वस्तुओं की सृष्टि मैंने की वैसे ही फिर भी सृष्टिओं की प्रकट रचना करूंगा । "अर्थात् जो सृष्टियां ब्रह्माण्ड एवं मनु के समाप्त हो जाने से नष्ट हो गई हैं वे यथापूर्व उसी तरह तथा उन्हीं रूपों में प्रगट होगीं । यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है । जैसा कि हमारे वेद में आया है कि "पुत्रों मैंने आप सभी की पहिले जैसे ही सृष्टि की थी उसी प्रकार भविष्य में भी करूंगा ।

ननु, अस्य परमसिद्धस्य सिद्धत्वसमाप्तिरनेन प्रकारेण न सिद्ध्येत् । अत्र वयं ब्रूमः - अन्यस्मिन् दिवसेऽपि परमेश्वरसत्कृतेऽस्मत् परमसिद्धे तत्स्वरूपेण प्रादुर्भूते तस्मिन् दिवसे पुनरपि परमसिद्धत्वं तत्रैव

---

१. अर्थात् यह क्रम प्रवाहनित्यता कहलाता है । यह एक निश्चितगति वाला कार्य है।

समाप्स्यते ।अस्मत्सिद्धस्येदं वाक्यं रात्रावीश्वरदर्शनार्थमुपरिगत-सम्बन्धि । अस्मिन्नर्थे प्रमाणं-तस्या रात्रावस्मन्महासिद्धाः प्रवाहमुष्ट्राणां दृष्टवन्तस्तेचोष्ट्रा अनवरतं चलन्तिं, एकैकस्योपरि मन्जूषाद्वयम् । एकैकमञ्जूषायामप्येकैकं जगत् तिष्ठति एतत्जगत्सदृशम् । एकैकस्मिन् जगति स्वसदृशो महासिद्धोऽस्ति । ब्रह्माणं प्रति पृष्टमिदं किमिति, तदा तेनोक्तं' महासिद्धं, तत्समयेऽहमुत्पन्नो जातः पश्याम्येनमुष्ट्राणां प्रवाहं मन्जूषासहितं गच्छन्तं परन्त्वंहं न जानामि किमिदमिति । इह मन्जूषापदस्य ब्रह्माण्डेष्वभिप्रायः । उष्ट्रप्रवाह-पदस्य कालेऽभिप्रायः । नित्यं ब्रह्माण्डानि तस्योपरि चलन्ति । यच्च ब्रह्मणोक्तमिदं न जानामीति तस्यायमाशयः - प्रवाहस्यादिमन्तं वा न जानामीति ।

अब यहां प्रश्न उठता है कि यदि यह माना जाए तो इससे हमारे परमसिद्ध (पैगम्बर मुहम्मद) की अन्तिम पैगम्बर की स्थिति कैसे सिद्ध होगी ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि आगामी सृष्टि के अवसर पर भी उसी दिवस पर परमेश्वर के द्वारा ये सम्मानित होकर हमारे परमसिद्ध के उसी अपने (पूर्व) रूप मे आविर्भूत हो जाने से उन्हें पुनः चरम या अन्तिम सिद्धत्व (पैगम्बर) का स्थान तथा सम्मान उसी तरह मिलता रहेगा ।[1]

हमारे परमसिद्ध का वह वाक्य जो प्रलय रात्रि में परमेश्वर के दर्शन से सम्बद्ध है वह प्रस्तुत तथ्य को पुष्ट करता है - उस रात्रि में हमारे परमसिद्ध ने उंटों का एक ऐसा प्रवाह या काफिला देखा जो निरन्तर चल रहा था । उसमें प्रत्येक उंट की पीठ पर दो सन्दूकें लदीं थीं और प्रत्येक सन्दूक में इस समग्र ब्रह्माण्ड के समान एक जगत् भरा हुआ था और प्रत्येक जगत् में अपने समय का एक महासिद्ध या देवदूत विद्यमान था । इस बात पर प्रश्नरूप में जब महासिद्ध ने ब्रह्मा या जिबरैल से कहा कि - हे महासिद्ध, उस समय क्या मैंने जन्म लिया था और सन्दूकों से लदे हुए उंटों के काफिलों को भी जाते हुए (भी) देखा था । परन्तु मैं नहीं जानता कि यह सब क्या है । उसने अपने उत्तर में मुझे बतलाया कि - हे महासिद्ध, जब से मैं इन उंटों के ऐसे काफिलो को देख रहा हूं जिन पर ये पेटियां लदी हुई हैं । मैं नहीं जानता कि ये कब से चल रही है और ये कब तक चलती रहेगी तथा इसका रहस्य क्या है ?

यहां ऊंट पर लदी पेटियों का आशय है ब्रह्माण्ड तथा उंटों के काफिलें का अर्थ है काल प्रवाह जिस पर आरूढ़ होकर ब्रह्माण्ड गतिशील होकर सदैव चलते रहते हैं । यहां जो ब्रह्मा ने यह कहा कि मैं इन्हें नहीं जानता । यह क्या है से आशाय हे कि इन उंटों के अन्तहीन प्रवाह का अन्त में नहीं जानता क्योंकि यह अपरिमेय है ।

---

१. इस्लाम धर्म की मान्यता के अनुसार पैगम्बर मुहम्मद अन्तिम पैगम्बर हैं तथा इनके बाद अन्य पैगम्बर के आने की सम्भावना नहीं है ।

विष्णुरूपांत्मन इच्छया स्वीयमनोमन्दराचलं कृत्वा संकल्पविकल्पान् दैव-दैत्यान् कृत्वा वेदसमुद्रं मथित्वा ज्ञान-रत्नमेकमीदृशं निष्कासितं यद् देवैर्दैत्यैश्च समुद्रमथनं कृत्वा निष्कासितेषु चतुर्दशरत्नेष्वपि न प्राप्तम् ।

.. आराधना परमेश्वरस्य विज्ञापना च या कृता तया समुद्रसंगमसमाप्तौ सामर्थ्यं प्राप्तम् । संहस्रोतरपञ्चषष्टितमे संवत्सरेऽस्मत्परशकाद्व्यतीते द्विचत्वारिंशे च संवत्सरेऽस्य वीतरागस्यायुषो विद्यमाने परमेश्वरेण सत्कारणीयः स्वजनश्रेष्ठतमोऽस्मत् परमसिद्धः सपरिवार-प्रतिनिधिसमूहः ।

इति मुहम्मद-दाराशिकूहप्रणीतः समुद्रसंगमनामा ग्रन्थः परिपूर्णतामगात् ।

अतएव विष्णुरूप अपनी आत्मा की इच्छा से अपने मन को मन्दराचल बनाकर संकल्प एवं विकल्परूपों को देवगण तथा दैत्यगण बना उन्हें एक दूसरे के सामने रखकर इस वेद-समुद्र का मंथन किया अर्थात् अनेक पवित्र धर्म-ग्रन्थों का आलोडन किया और इससे मैंने एक ज्ञान रत्न निकाला, जिसे देवों तथा दैत्यों ने मन्थन करने पर समुद्र से प्राप्त चौदह रत्नों में नहीं पाया था । मैंने जो परमेश्वर की आराधना एवं विज्ञापना की तो इससे मुझे जो सामर्थ्य मिला उससे मैं "समुद्रसंङ्गम्" जैसे अमृतमय इस ग्रन्थ को पूर्ण कर सका हूँ ।

हमारे परमसिद्ध के हिजरी शकाब्द के एक सहस्त्र पैंसठवे वर्ष (१०६५ हिजरी) के व्यतीत होने पर और इस वीतराग दाराशुकोह की आयु के बयालीसवें वर्ष के विद्यमान रहते हुए यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ ।

परमेश्वर हमारे परमसिद्ध सर्वोत्तम को अपनी आशीष देवें और वही परमसिद्ध के समस्त परिवार तथा उनके प्रतिनिधि एवम् उत्तराधिकारी जन को भी इस प्रकार अपनी पूर्ण आशीष प्रदान करें । इस प्रकार यह ग्रन्थ परिपूर्ण हुआ ।

।।श्री दाराशिकूहरचित "समुद्रसंगम" ग्रन्थ समाप्त । शुभम् ।।

।। इति भारद्वाज-कुलाब्धिरत्न-पण्डितनन्दकिशोरशुक्ल-सुत आचार्य श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री प्रणीत समुद्रसङ्गम की सङ्गमनी हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण तथा ग्रन्थ भी परिपूर्ण ।

पुस्तक परिचय

मुहम्मद दारा शिकोह के 'समुद्रसङ्गम' ग्रन्थ का संस्कृत भाषा तथा साहित्य में कई रूप में अद्वितीय स्थान माना जाता है । प्रथम तो यह भारत के मुगल शासक महान् अकबर के वंश में उत्पन्न राजकुमार, दूसरे फारसी, अरबी तथा संस्कृत भाषा के अभिज्ञ तथा ग्रन्थरचनाकार के रूप में तथा तीसरे धर्म, दर्शन के ऐसे ग्रन्थ क्रम में आना जिससे उस समय के दो प्रमुख धर्म हिन्दु या आर्य धर्म तथा मुस्लिम धर्म के कुछ महत्वपूर्ण भागों में अविरोधी रूप को उजागर कर उसके बीच संवादात्मक सेतु का कार्य करना । यद्यपि वह अपने कार्य में कितनी सफलता पा सका यह दूसरी बात हैं किन्तु फिर भी इसकी वर्तमान में भी प्रांसगिकता है यह कहना आज प्रासंगिक है।

वर्षों से इस ग्रन्थ की संस्कृत प्रति के मूल पाठ के साथ हिन्दी अनुवाद आदि के साथ संस्करण की अपेक्षा रही तथा इसी कारण आज इसे प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है कि दाराशिकोह का यह सम्भावना पूर्ण प्रयास भावी भारत के संस्कृत विद्वानों को अभीष्ट जानकारी देने वाले मूल ग्रन्थकार के प्रयास को सार्थकता दे सके । हमने यह सर्व प्रथम हिन्दी व्याख्या तथा अपेक्षित टिप्पणी तथा विद्वताप्रचुर प्रस्तावना के साथ सर्वप्रथम प्रकाशित कर एक अभाव पूर्ति में अपना योगदान दिया है यह निर्विवाद है ।

मूल्य 100.00

...द्या प्रकाशन

पो.बा. 1108, कचौड़ी गली,

दिल्ली-110007 (भारत) वाराणसी-220001.

ACC.NO.